द्वितीय वर्ष—गणेशाङ्क—विशेषाङ्क

सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

संस्थापक संपादक तथा संरक्षक :
योगिराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

अङ्क १
वर्ष २

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

अप्रैल
[illegible]

[श्री [illegible] एकान्तवास के पश्चात]

...क मूल्य
[illegible]

इस अङ्क का
२) रु०

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन, सवाई एत्मादपुर, जिला आगरा ।

इस अंक में :—

लेख	लेखक	पृष्ठ
१. बड़ा आश्चर्य है	अनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज	१
२. परम सिद्ध योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलालजी व उनकी अचिन्त्य योग शक्ति		२
३. जाग मछन्दर गोरख आया	जनकथा श्री धीरजनाथ	१२
४. हंस विद्या का हंस मन्त्र	श्री मनोहरलाल शर्मा	१३
५. प्रभु-प्रार्थना (कविता)	श्री श्यामलालजी खन्ना	२०
६. [illegible] का स्वरूप	श्री ओमप्रकाश पालीवाल	२१
७, प्रमाद से बचिए	आचार्य्य अवनीश	२
८. स्व, मेहेर बाबा के विचार, गूढ़ विद्या तथा आध्यात्मिक जीवन		२५
९. सदोपदेश (कविता)	श्री भोलेबाबा	३१
१०. ब्रह्मलीन मन	प्रेमवती एम० ए०	३७
११. मानस ज्ञान	श्रीगौरीशंकुर द्विवेदी शंकुर	४२
१२. मेरी पर्वतीय यात्रा और योगानुसन्धान	श्री हरिभक्त चैतन्य	४३
१३. सिद्ध गुफा के आधार (कविता)	सुधा श्री वास्तव	५२
१४. सद्गुरु देव की दिव्य शक्तियां	आचार्य यशोवर्धन	५३
१५. बालयोगी श्रीचन्द्र	श्री विजयसिंह	५६
१६. श्री गुरुदेव की नैपाल-यात्रा	श्री सूरज प्रसाद शर्मा	६०
१७. आरती-स्तुति		६७
१८. निर्माणाष्टक		७३
१९. योगिनी रामरती		७
२. सम्पादकीय	संयुक्त सम्पादक	८
२१. प्रियतम से मिलने के लिए, स्वामी रामतीर्थ टाइटिल		४

प्रकाशक :—
श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन
अवांई एत्मादपुर
आगरा

संयुक्त सम्पादक
श्री दिव्य

मुद्रक :—
कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस
आगरा-१

सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

वर्ष २
अङ्क १

"ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुविशदयन् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोगः'॥

अप्रेल
सन् १६६६ ई०

बड़ा आश्चर्य है !

व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ती।
रोगाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहम्॥
आयुः परिस्रवति भिन्नघटादिवाम्भो।
लोकस्तथाप्यहितमाचरतीति चित्रम्॥

अर्थ :—बुढ़ापा व्याघ्री की तरह तर्जना देता हुआ खड़ा है, रोग शत्रु की तरह शरीर पर प्रहार करते हैं। कच्चे घट से जिस प्रकार पानी स्रवित हो जाता है उसी प्रकार आयु दिन-दिन क्षीण हो रही है। तो भी लोग अपने-अपने अहित आचरण में लगे हुए हैं, यह बड़े आश्चर्य की बात है !

हमारा विशेष लेख—

परम सिद्ध योगेश्वर प्रभु श्री रामलालजी

व

उनकी अचिंत्य योग-शक्ति

[योगिराज अनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज]

योगी की अचिन्त्य शक्तियों का वर्णन करते हुये योग शिखोपनिषद् में निम्नांकित प्रकरण मिलता है :—

इच्छारूपो हि योगीन्द्रः
स्वतन्त्रस्त्व जरामरः।
क्रीडते त्रिषु लोकेषु
लीलया यत्रकुत्रचित् ॥
अचिन्त्य शक्तिमान्योगी
नाना रूपाणि धारयेत्।
संहरेच्च पुनस्तानि
स्वेच्छया विजितेन्द्रियः ॥
नासौ मरणमाप्नोति
पुनर्योगबलेन तु।
हठेन मृत एवासौ
मृतस्य मरणं कुतः ॥
मरणं यत्र सर्वेषां
तत्रासौ परिजीवति।
यत्र जीवन्ति मूढास्तु
तत्रासौ मृत एव वै ॥
कर्तव्यं नैव तस्यास्ति
कृतेनासौ न लिप्यते।
जीवन्मुक्तः सदा स्वच्छः
सर्व दोषविवर्जितः ॥

अर्थात् योगीन्द्र लोग इच्छा रूप होते हैं। अपनी इच्छा से ही वे लोग तीनों लोकों में स्वतन्त्र गति से विचरते रहा करते हैं। उनकी शक्ति इतनी अद्भुत होती है कि उसको हर व्यक्ति सोच भी नहीं सकता। वे लोग एक क्षण में हजारों रूप बना लें और फिर उनका संहार भी कर दें। वे लोग हठ साधना के द्वारा अपने आपको मार लेते हैं। कठिन योग साधनायें करते हैं इसके परिणाम स्वरूप वे लोग फिर मरण धर्मा नहीं रहते। जो व्यक्ति अपने आपको हठ साधना के द्वारा मार लेता है उसका फिर मरण नहीं होता। योगीन्द्र लोग विजितेन्द्रिय होते है। जिन वासना के गर्तों में सांसारिक लोग हर समय मरते रहते हैं वहां पर योगेश्वर लोग सर्वथा जीवित ही रहते हैं और जिन वासना क्षेत्रों के अन्दर दुनिया के लोग हर्षोल्लास के साथ भोगासक्ति में अपने आपको जिन्दा रखते हैं वहां पर वे यतीन्द्र लोग सदा सर्वदा मरे ही रहते हैं, ऐसे योगेश्वरों का कुछ भी कर्तव्य अवशिष्ट

नहीं रह जाता । उन लोगों की स्थिति कर्म बन्धन से परे हो जाती है । वे लोग सदैव जीवन्मुक्त, स्वच्छ एवं दोष रहित होते हैं । इस प्रकार अन्यान्य स्थानों में भी योगी के अद्भुत ऐश्वर्यों का वर्णन हमारे शास्त्रकारों ने किया है । भगवान् पतंजलिदेव ने बिल्कुल स्पष्ट शब्दों के अन्दर योगी के अधिकार का वर्णन करते हुये योगदर्शन के साधनपाद के ४० वें सूत्र में सरलता से कह दिया है कि :—

परमाणु परममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः ।

अर्थात् जिस समय योगी अपने चित्त को सूक्ष्म तत्त्व में लगाना आरम्भ करता है तो परमाणु पर्यन्त उसके साक्षात्कार का विषय बन जाता है और यदि वह स्थूल की ओर बढ़ता है तो पंच महाभूत अहंकार और इन्द्रियों को देखता हुआ मूल प्रकृति पर्यन्त बढ़ जाता है । उसके अधिकार की सीमा इतनी ऊँची बढ़ जाती है कि वह संयम के बल से सभी कुछ करने की शक्तिवाला हो जाता है । नैपाल हिमालय को एवं तिब्बत और भूटान की सीमास्थली हिमाच्छादित प्रदेश से पतितोद्धार के निमित्त उतर कर आनेवाले सद्गुरुदेव योगेश्वर प्रभु श्री रामलालजी महाराज की शक्तियों का मैं इस छोटे से लेख में क्या परिचय दूं । मैंने अपने जीवन में उनको हर समय शक्तिमय देखा और उनके अद्भुत योग ऐश्वर्य ने ही मेरे मन को उनके चरणारविन्द की ओर सहसा आकर्षित कर दिया ।

आँखों देखी अद्भुत घटना

यह घटना सन् १९२९ अनुमानतः शीत ऋतु माघ या फाल्गुन महीने की है । जिसमें मैंने अपने जीवन में पहली बार श्री गुरुदेवजी की योगशक्ति के अद्भुत प्रवाह को अपनी आंखों देखा था । मैं अमृतसर में रहता था मेरा तब अध्ययन काल था । श्री सद्गुरुदेवजी के दर्शन एवं योग-शिक्षा मैं पहले से ही प्राप्त कर चुका था । अकस्मात् मैंने किसी से सुना कि ऋषिकेश योग साधन आश्रम से मेरे दो बड़े गुरुभाई यहां कहीं आये हुये हैं, पता लगाने पर मुझे पता लगा कि वे रेलवे ब्रिज के नीचे लाला गागरमल की धर्मशाला में ठहरे हैं । मैं उनके दर्शनार्थ उस धर्मशाला में गया । मैंने वहां जाकर देखा कि श्री परम आदरणीय मुलखराजजी महाराज एवं श्री ब्रह्मचारी गोपालानन्दजी वहां आये हुये थे । श्री ब्रह्मचारी गोपालानन्दजी उस समय ध्यानस्थ थे । मेरे वहां जाने के कुछ समय बाद उनकी ध्यान-समाधि खुली और वह यह शब्द कहते हुये उठे कि हे सर्व शक्तिवान्, सर्व समर्थ योगेश्वर ! आप आप ही है । इस कलिकाल के समय में आप जैसा कोई देखने में नहीं आता । मैंने आदरणीय भाई श्री ब्रह्मचारी श्री गोपालानन्दजी से परम विनय पूर्वक पूछा कि भाई जी आप यह क्या कह रहे हैं । इस समय का आपका क्या अनुभव है । कृपा कर बतला दीजिये । उन्होंने मुझे बतलाया भाई तुम्हारा इस मार्ग में अभी प्रवेश नहीं है । तुम इन बातों को अभी समझ नहीं सकोगे इसलिये यह सब बातें पूछने की हठ मत करो । किन्तु जब मैंने अपने आग्रह को नहीं छोड़ा तो ब्रह्मचारीजी ने मुझे बतलाया कि भाई कल शाम को लगभग ५ बजे श्री गुरुदेवजी ने किसी तपेदिक के रोगी के रोग को अपने शरीर पर आकर्षित कर लिया है और उसके उस महा कष्ट को श्री प्रभुजी

तीन दिन तक लगातार स्वयं भोगेंगे और वह रोगी बिल्कुल पूर्ण स्वस्थ हो जायेगा। यह घटना बिल्कुल सत्य थी। इस महा आश्चर्य-प्रद एवं चमत्कारिक घटना को देखने के लिये ही मैं दो दिन बाद ऋषिकेश आश्रम पहुँचा। वहाँ जाने पर देखा कि श्री प्रभुजी नेपाली धुसा ओढ़े आराम कुर्सी पर बैठे हैं और उनके शरीर की कान्ति बहुत ही कृश एवं पीतवर्ण मालूम पड़ती है। मैंने जब उनकी इस स्थिति को जानने की इच्छा विनम्रता-पूर्वक की तो श्री गुरुदेवजी ने तो मुझे कुछ जवाब नहीं दिया प्रत्युत हँस पड़े और कहा कोई बात नहीं यह तो शरीर का धर्म है। इस प्रकार की बातें होती रहा करती हैं। किन्तु उनके सामने वही रोगी बैठा हुआ था जिसके कष्ट को श्री प्रभुजी ने अपने शरीर पर आकर्षित किया। उस रोगी ने मुझे स्वयं बतलाया कि भाई जी यह मेरे पापों का परिणाम है मेरी तकलीफ को श्री प्रभुजी ने अपनी योग-शक्ति से अपने शरीर पर आकर्षित करके भोगा है। मैंने स्वयं अर्ध तन्द्रावस्था में श्री प्रभुजी को अपने सामने खड़ा देखा और मुझ से स्पष्ट शब्दों में कहा कि ला यह अपना भोग अब हमें दे दे अब तू इसको नहीं भोग सकेगा। यह कह करके श्री प्रभुजी ने मेरे सारे रोग को अपने शरीर पर आकर्षित कर लिया। मैंने अपने रोग को एक काले-काले गोले के रूप में अपने शरीर से अपने मुख से निकलता देखा और श्री प्रभुजी के मुख में प्रवेश करते देखा। जिस समय श्री प्रभुजी ने इस महारोग का अपने शरीर पर आकर्षण किया उस दिन के तीन रोज बाद तक किसी को अपने पास तक आने नहीं दिया और एकान्त में लेटे रहे। यह अद्भुत घटना थी जिसको देख कर मैंने योग की अद्भुत शक्ति को पहचाना। एवं योगाभ्यास करने की तीव्रतम प्रवृत्ति बनी और उसी दिन से इस मार्ग का तीव्रतम अन्वेषण मेरे मन में प्रारम्भ हो गया और परमेश्वर की कृपा से अवश्य ही मुझे इसमें अच्छी सफलता मिली।

काय-निर्माण

ऊपर इस लेख के प्रारम्भ में योग शिखो-पनिषद् के जिन श्लोकों का उद्धरण दिया गया है उनमें एक श्लोक यह भी है :—

अचिन्त्य शक्तिमान्योगी
नाना रूपाणि धारयेत्।
संहरेच्च पुनस्तानि
स्वेच्छया विजितेन्द्रियः॥

अर्थात् अचिन्त्य शक्तिवाला योगी अपनी निर्माण कार्य की योग्यता से चाहे जितने शरीर धारण कर सकता है और फिर उनका संहरण भी कर सकता है। सद्गुरुदेव योगेश्वर प्रभु श्री रामलालजी महाराज के जीवन चरित्रों में इस प्रकार की घटनायें बहुत अधिक मिलती हैं जिन सबका इस छोटे से लेख में वर्णन करना भी सम्भव नहीं हो सकता। सन् १६११ के लगभग जिस समय श्री प्रभुजी ने कुछ समय सवाँई गांव में निवास किया था उस समय वहां के सत्संगियों ने एक गुफा बना दी थी जिसमें श्री प्रभुजी निवास किया करते थे उसी समय की यह घटना है। सत्संगी लोग हमेशा उनके चरणार-विन्द में आते रहा करते थे। एक समय एक आश्चर्य की घटना घटी। श्री प्रभुजी सवाँई

ग्राम में तो रहते ही थे किन्तु कभी-कभी इधर उधर भ्रमणार्थ भी चले जाया करते थे। एक बार अपने इन्हीं विचारों के अनुसार श्री प्रभु जी ने कहीं बाहर जाने की इच्छा की किन्तु सत्संगी लोगों ने उनको आग्रहपूर्वक रोक लिया और श्री प्रभुजी रुके रहे। किंतु लोगों के आश्चर्य का कोई ठिकाना न रहा जब कन्हीराम बोहरे ने सब लोगों के बीच में आ करके कहा कि महाराज जी आप इतनी जल्दी हम लोगों से पहले कैसे चले आये। कल तो आप हम लोगों के साथ रहे व गंगा स्नान किया था और गाड़ी कोई आती नहीं जो हमसे पहले आप आ गये हैं। उधर गांव के लोग जो सत्संग में बैठे हुए थे उन्होंने कहा तुम क्या कह रहे हो। श्री महाराज जी तो यहां से कहीं गए ही नहीं। सभी को बड़ा भारी आश्चर्य हुआ। उसी समय थोड़ी देर बाद किसी दूसरे व्यक्ति ने आकर के कहा कि महाराज कल तो आपने मेरी जिन्दगी बचा दी, यदि मैं उस भारी गड्ढे में गिर जाता तो अवश्य मर ही जाता। आपने मेरी बाजू पकड़ कर गिरने से बचा लिया। आपकी इस महान् कृपा का मैं क्या बदला दे सकता हूं। सत्संग में बैठे लोगों ने उसकी उस घटना को पूछा तो घटना बिल्कुल यथार्थ थी। श्री प्रभुजी ने निर्माण काय से उसके शहर में प्रगट होकर उसकी रक्षा की ही थी। किन्तु सुनने वाले सभी सत्संगियों को महान् आश्चर्य था। उस समय में श्री प्रभुजी स्थूल शरीर से वहां से कहीं गये नहीं थे। इस ही प्रकार की उनके 'निर्माण काय' को प्रगट करने वाली अनेकानेक घटनायें मेरी स्मृति में हैं जिनको वर्णन करने से इस लेख का बड़ा आकार बन जायेगा। किन्तु फिर भी निर्माण काय से सम्बन्ध रखने वाली एक दिव्य घटना का थोड़ा सा संकेत तो कर ही देना उचित समझता हूं।

यशवन्त वाली घटना

अमृतसर में एक पुराने सत्संगी भाई धूप की दुकान करते हैं। वह बहुत छोटी आयु में श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में सेवार्थ आये थे इन्होंने श्री प्रभुजी के निर्माण काय की घटना अपनी आंखों देखी बतलाई थी। इनका नाम यशवन्त है। दुर्ग्याना में लोहे के फाटक के साथ माई धवन्तरिकौर की धर्म-शाला के सामने इनकी धूप की दुकान है। जिस समय अपनी बाल्यावस्था में इन्होंने मन लगाकर श्री प्रभुजी की सेवा की उसी समय इनके मन में एक विचार बना कि श्री गुरुदेव योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज इनके घर चलें और अपने चरणों से उस भूमि को पवित्र करें। अतः उन्होंने हठपूर्वक श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में निवेदन किया कि प्रभो आप कृपा करके एक बार मेरे घर अवश्य चले चलें। श्री प्रभुजी उस दिन अधिक व्यस्त थे। इनकी प्रार्थना को किसी प्रकार स्वीकार नहीं किया जा सकता था। किन्तु इनकी अत्यन्त विनम्रता को देखकर श्री प्रभुजी ने कह दिया कि बेटा तू अपने घर चल हम समय निकाल कर अवश्य पहुँच जायेंगे। बालक यशवन्त ने अपने मन में विचार किया कि श्री प्रभुजी ने मेरे मन की तुष्टि के लिए पहुँच जाने की बात कह दी है। यदि इन्होंने जाना होता तो मेरे साथ ही चलते या मुझे आज्ञा करते तुम उस समय

मुझे बुलाने के लिए आ जाना उस समय मैं तुम्हारे साथ चलूंगा। किन्तु इन्होंने कहा कि हम पहुँच जायेंगे। अपने आप ही प्रभु जी किसके घर जाते हैं यह तो टालने वाली बात है। उस सरल बच्चे को यह बोध नहीं था कि श्री प्रभु जी को वह कितना प्रिय है और वे सर्व अन्तर्यामी अपनी योग शक्ति से अपने वचन को निभायेंगे। यशवन्त निराश मन से अपने घर पहुँचा। बैठक का दरवाजा खोला तो क्या देखता है कि सामने श्री प्रभु जी स्थूल रूप से विराजमान हैं और हंस रहे हैं। यशवन्त ने श्री गुरुदेव जी के चरण पकड़ विनय की कि हे प्रभु जी मैं तो अभी रास्ते से ही चलकर आरहा हूँ और आगे से दरवाजा बन्द था आप दरवाजा बन्द होने पर किस प्रकार आ गये हैं। श्री प्रभु जी ने उत्तर दिया कि बेटा तुम्हारे प्रेम को देखकर तुम्हारे घर आ गया हूं किन्तु यह बात किसी से नहीं कहना। यह घटना प्रिय यशवन्त धूत वाले ने मुझको स्वयं बतलाई थी। श्री प्रभुजी के काय निर्माण का यह एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

अणिमा प्रयोग एवं आकाश गमन

हमें पातंजलि योग दर्शन बतलाता है कि :—

> स्थूलस्वरूप सूक्ष्मान्वयार्थ-
> वत्त्व संयमाद्भूतजयः।
> ततोऽणिमादि प्रादुर्भावः
> कायसतत्तद्धर्मानभिघातश्च।

अर्थात् महाभूतों के स्थूल स्वरूप, सूक्ष्म अन्वय अर्थात् इन पांच रूपों के अन्दर संयम करने से योगी भूतजयी बन जाता है और इस ही के फलस्वरूप अणिमादिक सिद्धियें उपलब्ध होती हैं और रूप लावण्य वज्रकाय आदि काय संपत्ति रुकावट के दायरे से आगे निकल जाती है अर्थात् भूतजयी योगी को काय सम्पदा नभिघात स्वतः ही सिद्ध हो जाता है। ऐसे ही व्यक्ति को आकाशगमन आदि सिद्धियें प्राप्त हो जाती हैं। भगवान पतंजलि देव बतलाते हैं:—

> श्रोत्राकाशयोः सम्बन्ध-
> संयमाद्दिव्यं श्रोत्रम्।

अर्थात् काया और आकाश के सम्बन्ध में शरीर में रुई के मानिन्द हल्कापन आ जाता है तब वह योगी समाधि के बल से आकाश गमन करता है। योग योगेश्वर सद्गुरु देव प्रभु श्री रामलाल जी महाराज जिस समय सवाई गांव में निवास करते थे उस समय की यह दिव्य घटना है। एक बार सत्संग लगा हुआ था। आसपास सवाई ऐत्मादपुर टूण्डला आदि के सभी सत्संगी श्री प्रभुजी की सेवा में सत्संगार्थ उपस्थित थे। अकस्मात प्रसंग चला श्री प्रभु जी ने अपने देशान्तर गमन की इच्छा प्रकट की। प्रभु प्रेमी सत्संगियों पर यह बड़ा आघात था। वे अपने प्यारे गुरुदेव के विछोह को सहन नहीं कर सकते थे इसलिये सभी ने विनयपूर्वक देशान्तर गमन से रोक लेने के लिए अत्यन्त विनयपूर्वक प्रार्थना की। किन्तु श्री प्रभु जी को यह स्वीकार नहीं था वे जाना ही चाहते थे। लोगों के मन में यह भ्रांति पूरी-पूरी बैठ चुकी कि आज श्री प्रभु जी कहीं न कहीं अवश्य चले जायेंगे। इसी भ्रांति के वशीभूत होकर जिस समय श्री

प्रभुजी अपनी समाधि के अभ्यास के लिए गुफा में चले गये उसी समय बाहर चबूतरे पर बैठे रहने वाले सत्संगियों ने बाहर से ताला लगा दिया। जिससे श्री प्रभु जी रात्रि में चुपचाप ही नहीं चले जायें। लोगों का विचार था कि इस समय श्री प्रभु जी समाधि में बैठ गये हैं और प्रातःकाल समाधि खुलते ही हम ताला खोल देंगे। किन्तु उन लोगों की भावना पूरी नहीं हो सकी। श्री प्रभु जी रात्रि को ही अणिमा-सिद्धि के प्रयोग से गुफा से बाहर निकल गये और आकाश मार्ग से उड़कर अपने गंतव्य स्थान को चले गये। जिस समय श्री प्रभु जी आकाश मार्ग से उड़ कर जा रहे थे तो सवाँई गांव के खेतों में सूखा नाम का धीमर हल चला रहा था। उसने देखा प्रभु जी आकाश मार्ग से कहीं जा रहे हैं। पहले तो वह बड़ा भयभीत हुआ क्योंकि उसके लिए पहला दृश्य था जब उसने आकाश में उड़ते हुए व्यक्ति को देखा। उसके मन में विचार आया कि यह क्या कोई मनुष्य है या यक्ष, किन्नर या देवता है। जब उसको अत्यन्त भयभीत देखा तो श्री प्रभु जी बोल उठे और कहा—'अरे सूखा हम गुफा वाले बाबा हैं क्या तू डर गया। तुझे डरना नहीं चाहिये।' श्री प्रभु जी की वाणी को सुनकर उसको कुछ धैर्य हुआ। यह वह पहले से ही जानता था कि गुफा वाले बाबा कोई साधारण साधू नहीं हैं। वे चमत्कारिक महात्मा हैं। उनके वरदान देने से गांव के लोगों को अनेक प्रकार के महान लाभ हुये हैं जो वर्णन से बाहर है। यह जान कर उसके मन में कोई भय नहीं रहा। उसको सान्त्वना देकर आकाश मार्ग से ही श्री प्रभुजी चले गये। प्रातःकाल होने पर सत्संगी लोग इधर-उधर से आये। गुफा द्वार का ताला खोलकर भीतर जाने की चेष्टा की किन्तु उन्होंने आश्चर्य से देखा कि भीतर से भी संकुली बन्द है। उन लोगों ने समझा श्री प्रभु जी अभी समाधि में समाधिस्थ होंगे अतः अन्दर से ही संकुली लगी है। किन्तु फिर बहुत विलम्ब हो जाने के बाद एक ओर से गुफा के ऊपर वाले कमरे की दीवार को काट कर एक बच्चे को अन्दर घुसाया। उस बच्चे ने अन्दर जाकर देखा कि श्री प्रभुजी वहां नहीं हैं। गुफा में से एक आवाज आई—बेटा तुमने हमें यहां हठात् रोकना चाहा था इसलिए अब हम यहां से चले गये हैं। इस समय तो तुम सबको हमारे दर्शन नहीं हो सकते। बारह वर्ष के बाद पुनः लौटकर आयेंगे। तुम लोग पहचान सको तो पहचान लेना। ऐसा ही हुआ भी। बारह साल के बाद श्री प्रभु जी पुनः सवाँई ग्राम में आये और यहां के लोग नहीं पहचान सके किन्तु श्री प्रभुजी ने अनुग्रहवश इन लोगों को परिचय करा दिया।

अमोघ वाणी

योग दर्शन में भगवान पतंजलि देव लिखते हैं :—

सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ।

श्री भगवान व्यासदेव जी भाष्य करते हुए लिखते हैं :—

धार्मिको भूया इति भवति धार्मिकः स्वर्गं प्राप्नुहीति स्वर्गं प्राप्नोति अमोघाऽस्य वाग भवति ॥

अर्थात् सत्य प्रतिष्ठ योगी की वाणी बिल्कुल अमोघ हो जाती है। वह जो कुछ भी अपनी वाणी से कहता है वह सब सफल हो जाता है यदि वह किसी पापात्मा को कह दे 'धार्मिको भूया' तो वह धर्मात्मा हो जाया करता है। इसके अतिरिक्त वह किसी को कह दे 'स्वर्गं प्राप्नोहि' तो वह स्वर्ग लोक का अधिकारी बन जाता है इसके अतिरिक्त यदि योगी संयम बल से इतना ऊँचा सत्य प्रतिष्ठ हो जाय कि उसकी बुद्धि में ही ऋत का वास हो जाय और समाधि में उत्तम प्रज्ञा विवेक हो जाये तो उसके संकल्प में ही दिव्य शक्ति आ जाती है। मैंने सवाई गांव में आने पर श्री प्रभु जी के चरित्रों में यह बात पूर्ण रूपेण स्पष्ट देखी कि उनकी वाणी पूर्णरूपेण अमोघ थी। उन्होंने मजाक में भी जो कुछ कह दिया वह पूर्ण रूपेण सत्य हुआ। जब मैं पहली बार सवाई गांव में आया तो ठाकुर गुलाबसिंह की पक्की कुटिया में ठहरा था। वहां पर मेरे पास एक बूढ़े ने आना आरम्भ किया वो जबान से हकला कर बोलता था अतः उसकी बात को पूरी तरह नहीं समझ पाता था फिर भी आसपास के लोगों ने बूढ़े की भाषा समझाई। बुड्ढा कुछ जल्दी बोला करता था। वह मेरे पास आता और बार २ यही शब्द कहता—महाराज जी आपके चार गुलाम हैं उनसे जितनी अधिक से अधिक सेवा ले सको लेना। मैंने एक रोज उससे पूछा भाई ये चार गुलाम क्या कहते हो मैं नहीं समझ सका तो उसने मुझे स्पष्ट बोल कर समझाया कि महाराज मेरी तीन शादियां हुईं और तीनों स्त्री स्वर्ग चली गईं। और जिस समय मेरी तीसरी स्त्री का देहान्त हुआ तो मेरे मन में अतिशय दुःख हुआ। मैं पागलों की तरह रोता और बिलबिलाता बड़े बाबा (श्री प्रभु जी) के चरणारविन्द में पहुँचा उन्होंने मेरे दुःख को देखकर कहा कि भाई ठकुरी तू रोता क्यों है डर मत अभी तेरी चौथी शादी होगी और उससे चार बच्चे होंगे। बुड्ढे ने कहा, सो महाराज मेरी चौथी शादी भी हो गई और जैसा श्री प्रभु जी ने मुखारविन्द से कहा था वैसे ही मेरी चौथी शादी की पत्नी से चारों बच्चे भी मौजूद हैं। उनसे आप जो भी बड़ी से बड़ी सेवा ले सकें अवश्य ले लें। वे लोग अवश्य आपकी सेवा करेंगे। इसी प्रकार की और बहुत सी बातें इस गांव के लोगों ने मुझको बताईं जो श्री प्रभु जी की अमोघ वाणी की शुद्ध प्रतीक थीं।

निर्माण चित्त के द्वारा उपदेश

भगवान पतंजलि देव ने योग-दर्शन में कहा है :—

निर्माण चित्तान्यस्मितामात्रात्

इस सूत्र का भगवान व्यास देव जी भाष्य करते हुए लिखते हैं :—

अस्मितामात्रं चित्तकारणमुपादाय निर्माणचित्तानि करोति ततः सचित्तान भवन्ति ॥

अर्थात् जब योगी अस्मितानुगत योग का उत्कृष्ट विद्यार्थी बन जाता है तो उसके अन्दर स्वाभाविक योग्यता चित्त निर्माण की आ जाया करती है। वे निर्माणित चित्त क्योंकि ध्यानज है इसलिए इसमें कर्माशय की

स्थिति नहीं होती। निर्माणित चित्त केवल मात्र अपने मनोभावों का दूसरों को ज्ञान कराने के लिए हुआ करता है। जब योगी अपने इस प्रकार के चित्तों का निर्माण किया करता है तो प्रवृत्ति भेद से उन सबको अपने प्रधान चित्त के अधीन रखकर अपने विनयी लोगों में अनेक प्रकार के उपदेश या वार्तालाप आदि किया करता है। हमारे पुराने इतिहास में निर्माण चित्त के इस प्रकार के बहुत से उदाहरण मिलते हैं। जैसे भगवान कपिलदेव ने अपने आसुरी नाम के शिष्य को निर्माण चित्त का आश्रय लेकर तंत्र का उपदेश दिया था।

इसी प्रकार से मैंने श्री गुरुदेव योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी को अनेक बार उपदेश देते देखा। यद्यपि उनका निर्माणित चित्त साधक श्रेणी वाला नहीं था। अनादि महासिद्धों की तरह ही यह उनके सहज कार्य थे। किन्तु अभ्यास करने वाला साधक समुदाय जब उनकी आंखों के सामने बैठ करके अपना-अपना ध्यानाभ्यास किया करते थे तो बहुत ही जल्दी अपने ध्येय में तन्मय हो जाया करते थे और वह सभी यह देखते थे कि उन सभी के सामने श्री प्रभु जी विराजमान हैं। और उनके चित्त सूक्ष्म तत्त्व का स्फुरण करा रहे हैं। कई बार यह देखने में आया कि ध्यानाभ्यास करने वाले साधकों की श्रेणियें सामने बैठी हैं और श्री प्रभु जी ने चित्त निर्माण के साथ उन सबके पास जाकर एक ही बात का उपदेश दिया और उस तत्त्व को जिनको उत्कृष्ट स्थिति थी उन सब ने एक ही जैसा अनुभव किया। इस प्रकार अभ्यास करने वाले साधकों को थोड़े समय के बाद स्वयं चित्त निर्माण की योग्यता आ जाया करती थी। पहले पहल अपने मन के संकल्प से स्वयं श्री प्रभु जी ही उनके ध्यानज चित्तों का निर्माण कर दिया करते थे जिसके फलस्वरूप ध्यानाभ्यासी साधक अपने आपको एक से अनेक रूपों में देखने लगता था और यह स्पष्ट अनुभव करता था कि मैं यहां बैठने वाला अमुक व्यक्ति अमुक नाम वाले व्यक्ति के पास ही हूं और उससे बातचीत कर रहा हूं। इस प्रकार की अनुभूति होना चित्त निर्माण योग्यता का ही प्रखर परिणाम था।

महिमा का उपयोग

इस लेख में पहले बतलाया जा चुका है कि भूतजय हो जाने के बाद योगी को अनायास ही अणिमादिक सिद्धियें प्राप्त हो जाया करती हैं। जिसमें योगी अणुमात्र का चिन्तन करता हुआ अणु बन जाय तो समझ लेना चाहिये कि अणिमा सिद्धि हो गई। लघुत्व का चिन्तन करता हुआ अपने अन्दर लघुत्व का स्पष्ट अनुभव करने लगे और अपने आप को रुई की मानिन्द हलका देखने लगे तो समझ लेना चाहिये यह अनुभव लघिमा सिद्धि का है और महिमा का चिन्तन करता हुआ महान अर्थात बड़ा हो जाता है। उसका संकल्प इतना तीव्र हो जाता है कि वह चिन्तन मात्र से ही अपने को महान देखने लगता है। सवाई गांव के चरित्रों में उस विलक्षण घटना को प्रायः सभी लोग जानते हैं। जबकि चौहरे करणसिंह व श्री प्यारेलाल पटवारी ने श्री प्रभु जी से योग की कोई विशेष चमत्कृति देखने के लिए बार-बार हठ पूर्वक आग्रह किया था यद्यपि श्री प्रभु जी इस प्रकार की कोई बात नहीं चाहते थे।

किन्तु उन लोगों के महीनों आग्रह करने का यह परिणाम निकला कि श्री प्रभु जी हंस पड़े और मुस्कराकर कहा कि अच्छा देखो जो भी कुछ तुम देखना चाहते हो। उन लोगों ने अपनी आंखों के सामने क्षण भर में ही श्री प्रभु जी को बहुत बड़े महान रूप में देखा जिसको देखकर वे लोग अपने आप को सम्हाल नहीं सके। प्रत्युत बेहोश होगये। अचेत अवस्था में भी अनेकानेक दृश्य देखते रहे। जिनका कोई भी वर्णन नहीं किया जा सकता। यह योगेश्वर श्री प्रभुजी की महिमा सिद्धि का महान स्वरूप था और इन सब बातों के लिए उनके मन में साधारण संस्कार का स्फुरण होना ही पर्याप्त होता था। ज्योंही उनके मन में इस प्रकार का संकल्प होता त्योंही साधकों के मन में तत्काल अनुभूतियें हो जाया करती थीं।

संस्कारों का साक्षात्कार एवं भावी जन्म का ज्ञान

हमें योग दर्शन बतलाता है :—

संस्कारसाक्षात्करणात्पूर्वजातिज्ञानम्।

अर्थात् योगी को संस्कारों के साक्षात्कार करने से पूर्व जाति का ज्ञान हो जाया करता है। पूर्व जाति में हम कौन थे उनका संयम विधि से अनुभव करने पर योगी को ज्ञान हो जाया करता है। और इसी प्रकार से दूसरे के चित्त के संस्कारों का ज्ञान उसके अनुरक्त चित्त को साक्षात्कार कर लेने के बाद अवश्य ही हो जाया करता है। भगवान पतंजलिदेव बतलाते हैं :—

प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम्।

भगवान व्यासदेव भाष्य करते हैं :—

प्रत्यये संयमात्प्रत्ययस्य साक्षात्करणात्ततः परचित्त ज्ञानम्।

प्रत्यय शब्द का अर्थ है प्रतीयतेऽर्थोऽनेनेति प्रत्यय अर्थात् जिसका अवलम्ब लेकर के अर्थ का ठीक-ठीक बोध हो जाय उसको प्रत्यय कहा करते हैं। अर्थ ज्ञान का यही मूल कारण है। चित्त के अन्दर घूमने वाले संस्कारों में संयम करने से योगी को दूसरे चित्त का भी यथार्थ ज्ञान हो जाया करता है केवल मात्र योग विद्या ही सब प्रकार से उत्कृष्ट ज्ञान की दात्री है। एक बार मेरे गुरु भाई ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी के मन में अपनी मृतात्मा माता की गति का ज्ञान प्राप्त करने की प्रबल इच्छा हुई। हमने अपने पहले लेखों के अन्दर यह स्पष्ट रूप से समझा दिया है कि योगी के संयमित चित्त में जिस प्रकार के संस्कारों का स्फुरण होगा वे सभी संस्कार समाधि प्रज्ञा को प्राप्त करके वो पूर्ण रूपेण प्रस्फुटित हो निकलते हैं। और प्रस्फुटित होने पर छोटे संस्कार भी विस्तृत होकर दिखाई देने लगते हैं। यही संस्कारों का प्रत्यक्षीकरण है। श्री गोपालानन्द जी के मन में अपनी माता की गति देखने की प्रेरणा हुई। उस समय उनका चित्त एकाग्र था किन्तु अपनी माता की गति का स्पष्ट ज्ञान नहीं हो रहा था उन्होंने ध्यानावस्था में श्री प्रभु जी से प्रार्थना की कि हे प्रभो कृपाकर मेरी माता की गति का ज्ञान कराओ। श्री प्रभु जी ने थोड़ा सा संकेत किया और श्री गोपालानन्द जी के मन को बल दिया। जिसके फल स्वरूप एक मछियारी की लड़की के रूप में

उन्होंने अपनी माता को देखा । अपनी माता की इस प्रकार की निकृष्टि गति को देखकर श्री ब्रह्मचारी जी को बहुत कष्ट हुआ उन्होंने श्री प्रभु जी से प्रार्थना की कि हे प्रभो इसकी कोख से मैंने जन्म लिया था मेरी जन्मदात्री मेरी इस माता की यह गति क्यों हुई । श्री प्रभु जी ने ध्यान में ही आज्ञा दी कि तुम इसके मरणासन्न-समय के संस्कारों को देखो यह उस समय क्या चाह रहे थे । श्री ब्रह्मचारी जी ने श्री प्रभु जी की आज्ञानुसार अपनी माता के मरण समय में चित्त में संयम किया कि उसका चित्त मृत्यु काल में किन संस्कारों को चिन्तन करता हुआ देह त्याग कर रहा था । ब्रह्मचारी जी ने देखा कि उनकी माता मृत्यु के समय मछली के तेल का चिन्तन करती हुई शरीर को छोड़ रही है । यह सब दृश्य देखकर ब्रह्मचारी जी के मन को बहुत भारी दुःख हुआ कि अन्तिम समय में उनकी माता ने मछली के तेल का स्मरण क्यों किया । उन्होंने ध्यान समाधि से उठकर अपनी बड़ी एवं सहोदरी बहिन रुक्मणीदेवी से पूछा कि बहिन माता जी अन्तिम समय किन भावों का चिन्तन कर रही थीं । उनकी बहिन ने बतलाया कि भाई उनके पेट में अफारा था और एक डाक्टर ने अफारे की शान्ति के लिए मछली का तेल पीना बतलाया था । हम लोगों ने यह प्रयत्न भी किया कि किसी भी प्रकार इनकी जिन्दगी बच जाय तो अच्छा ही है । बाद में शुद्धि कर लेंगे । एक बार उनको मछली का तेल ही पिला दें । हमने मछली का तेल प्राप्त करने बाजार आदमी भेजा । उसके लौट कर आने के पहले ही श्री माता जी ने अपने शरीर का त्याग कर दिया था । सम्भव है उनके मन में मछली के तेल के संस्कार मृत्यु काल में रहे होंगे । श्री ब्रह्मचारी जी ने स्पष्ट रूप से समझ लिया कि अन्त मता सो गता । भगवान जगदात्मा श्री कृष्ण ने भी गीता के ८ वें अध्याय के इसी भाव को बिल्कुल स्पष्ट शब्दों में कह दिया है कि :—

अन्तकाले च मामेव-
स्मरन्मुक्त्वाकलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं
याति नास्त्यत्रसंशयः ॥
यं यं वापि स्मरन्भावं
त्यजत्यन्तेकलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय
सदा तद्भावभावितः ॥

अर्थात् अन्तिम समय में जो मेरा स्मरण करता हुआ देह त्याग करता है वह संशय रहित मुझे ही प्राप्त हो जाया करता है । इसके अतिरिक्त जो व्यक्ति मृत्यु काल में जिन जिन भावों का स्मरण करता हुआ शरीर त्याग करता है तद् भाव भावित होकर वह वैसी ही गति को प्राप्त हो जाया करता है । इस प्रकार श्री प्रभु जी ने अपनी शक्ति देकर ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी को संस्कार साक्षात्कार करने की योग्यता वाला बनाया । इसके अतिरिक्त उनके अलौकिक चरित्रों को मैं कहाँ तक वर्णन करूँ । वे सब तो अब भी इसी प्रकार घटित होते रहा करते हैं जैसे उनको उपस्थित काल में होते रहा करते थे । उनका स्थान पर प्रकट होना वरदान देना व अपने जिज्ञासु भक्तों की सहायता करना

एक जन कथा—

जाग मछन्दर गोरख आया !

[श्री धीरजनाथ]

परम सिद्ध योगी मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य गोरखनाथ बड़े ही निष्ठावान और चरित्रवान व्यक्ति थे। जबकि उनके गुरु मत्स्येन्द्रनाथ दूसरों का दुःख बटाने में सहज ही द्रवित हो जाने वाले महापुरुषों में से थे। त्रियादेश की एक रानी, ने हनुमान जी की आराधना के फलस्वरूप उनके सौजन्य से योगी मत्स्येन्द्र नाथ का दयालुतापूर्ण सहयोग व स्नेह प्राप्त कर लिया था। मत्स्येन्द्रनाथ रानी को हनुमान जी की अनन्य आराधिका जानकर उस पर अपनी कृपा दृष्टि रखते थे और बहुधा उसकी राजधानी में आया जाया करते थे। कभी-कभी वे वहां दीर्घकाल तक अपना डेरा डाल दिया करते थे। उनके शिष्य गोरख को अपने गुरु का त्रिया देश में जाकर लम्बे काल तक रहना अच्छा नहीं लगा। वे चाहते थे कि उनके गुरु अपने विरक्त शिष्यों को छोड़ कर कहीं न जायें लेकिन गुरुवर को लाया कैसे जाय यह समस्या गोरख के सामने थी।

एक दिन गोरख ने सुना कि त्रिया देश की रानी ने एक बहुत बड़े नृत्य-समारोह का आयोजन किया है। राज्य की कुशल व श्रेष्ठ नर्तकियां वहां अपने नृत्य का प्रदर्शन करेंगी। गोरख ने यह भी सुना योगी मत्स्येन्द्रनाथ—जिन्हें मछन्दरनाथ भी कहा गया है—इस समारोह में रानी के आग्रह पर भाग लेंगे। गोरख ने इस अवसर को अपने लिये उपयुक्त समझा और एक कुशल श्रेष्ठ नर्तकी के साथ वे एक तबला वादक के रूप में नियत समय पर नृत्य-मण्डप में जा पहुँचे। ठीक समय पर रानी व अतिथियों के आने पर नृत्य आरम्भ हुआ। थोड़ी देर में ही लोगों ने देखा कि नर्तकी के साथ तबला वादक उदर शूल से पीड़ित होकर अलग हट गया है। नर्तकी ने रंग में भंग देखकर तबला वादक गोरख को तबला बजाने का इशारा किया। नर्तकी को यह भी रहस्य नहीं मालूम था कि तबला वादक प्रसिद्ध योगी गोरखनाथ हैं और वे अपने गुरु मत्स्येन्द्रनाथ को युक्ति से निकाल ले जाने के लिए आये हैं और यह भी किसी को नहीं मालूम था कि नर्तकी के साथ तबला बजाने वाले तबलची के पेट में दर्द गोरखनाथ ने ही मंत्र बल से पैदा किया था।

गोरख ने तबला पकड़ा और मादक ध्वनि के साथ तबले से बोल निकालने लगे—

जाग मछन्दर गोरख आया
जाग मछन्दर गोरख आया

कहते हैं मत्स्येन्द्रनाथ ने अपने शिष्य के तबले द्वारा निकाले गये बोलों को पहचाना और तुरन्त त्रिया देश को छोड़ कर अपने उस साधना स्थल की ओर चले गये जो गोरख जैसे शिष्यों की तपोभूमि थी।

नित्य का कार्य है। उनका प्रत्येक क्रिया-कलाप एवं प्रत्येक शिक्षा मनुष्य के लिए हर समय योगोपदेश कर रही है जो लोग इन लेखों को पढ़कर अपनेआपको पवित्र योगमार्ग की ओर बढ़ाने का प्रयत्न करेंगे उनकी वह सर्व शक्तिवान गुरुदेव अवश्य ही मदद करेंगे।

हंस विद्या का हंस-मंत्र महावाक्य ही है

[पं० मनोहरलालजी शर्मा एम० ए०, गुरुभक्तरत्न, कलकत्ता]

योग बीज में लिखा है :—

चित्त' पुनष्टं यदि भासते वै,
तत्र प्रतीतो मरुतो पि नाशः।
न वा यदि स्यान्न तु तस्य शास्त्रं
नात्म प्रतीतिर्न गुरुर्न मोक्षः॥

यदि चित्त नष्ट हुआ प्रतीत होता हो तो समझ लेना चाहिये कि वायु भी विजित हो गया है। जो इस प्रकार न मानता हो तो समझ लेना कि उस मूढ़ का न तो कोई शास्त्र है, न उसे अनुभूति है, न उसका कोई गुरु और न उसके लिये मोक्ष है।

यत्र देशे वसेद् वायु-
श्चित्त' तद्वसति ध्रुवम् ॥६९॥

—योगशिखोपनिषद

जहां प्राण निवास करता है निश्चय ही वहां मन भी निवास करता है। हठ प्रदीपिका में स्वात्माराम योगीन्द्र ने लिखा है :—

पवनो बध्यते येन
मनस्तेनैव बध्यते।
मनश्च बध्यते येन
पवनस्तेन बध्यते ॥२१॥
मनो यत्र विलीयते
पवनस्तत्र लीयते।
पवनो लीयते यत्र
मनस्तत्र विलीयते ॥२३॥

दुग्धांबुवत्सं मिलितावुभौ तौ,
तुल्यक्रियौ मानस-मारुतौहि।
यतो मरुत्तत्र मनः प्रवृत्ति-
र्यतो मनस्तत्र मरुत्प्रवृत्तिः ॥२४॥

जो योगी प्राण बांध लेता है वही योगी मन को भी बांध लेता है। जिस आधार में मन लय होता है, पवन भी वहीं लय होता है। पवन जिस आधार में लय होता है, मन भी उसी आधार में लय होता है। दूध और जल की भांति मन और प्राण मिले हुये हैं। मन और प्राण की क्रिया समान हैं। जहां प्राण की प्रवृत्ति होती है अर्थात् जिन नाड़ी चक्रों में प्राण की प्रवृत्ति गति होती है, वहीं मन की भी प्रवृत्ति होती है। जिस स्थान में मन जाता है वहीं प्राण पहुँच जाता है। वसिष्ठ जी ने कहा है :—

अविना भाविनी नित्यं
जन्तूनां प्राण चेतसी।

हे रामजी ! प्राण और चित्त की अविनाभाव स्थिति है, अर्थात् ये एक दूसरे के बिना नहीं रह सकते और अपने विनाश से मोक्ष रूप उत्तम कार्य करते हैं।

कुरुतश्च विनाशेन
कार्यं मोक्षाख्यमुत्तमम्।

यहां तक यह बताया कि प्राण नियमन से मन भी नियमित हो जाता है, मन नियमन

का अर्थ मन का रजोगुण, तमोगुण से परिशोधन ही है।

योग चूडामणि उपनिषद् में लिखते हैं:—

जाग्रन्नेत्रद्वयोर्मध्ये
हंस एव प्रकाशते।
सकारः खेचरी प्रोक्त-
स्त्वंपदं चेति निश्चितम् ॥८२॥
हंकारः परमेशः स्यात्
तत्पदं चेतिनिश्चितम्।
सकारो ध्यायते जन्तु-
र्हकारोहि भवेत् ध्रुवम् ॥८३॥
इन्द्रियैर्बध्यते जीव
आत्मा चैव न बध्यते।
ममत्वेन भवेत् जीवो
निर्ममत्वेन केवलः ॥८४॥

जाग्रदवस्था में जीवात्मा रूप हंस दोनों नेत्रों के मध्य में प्रकाशित होता है। सकार को खेचरी शक्ति जीवात्मा कहते हैं। सकार निश्चय ही 'तत्त्वमसि' महावाक्य में स्थित त्वम्पद का वाचक है। हकार परमेश्वर कहाता है। यह निश्चय ही तत्पद का वाचक है। सकार का ध्यान, शोधन अर्थात् 'नेति नेति' महावाक्य से विवेक करने पर साधक निश्चय ही हकार बन जाता है। सकार और हकार दोनों एक ही हैं, संज्ञा मात्र भेद है, वस्तु भेद नहीं। जीवात्मा का पंचकोश विवेक से परमात्मत्व प्रकाशित हो जाता है। हंस मन्त्र उलटने पर तत्त्वमसि महावाक्य ही है।

मुजफ्फर नगर वाले महा पण्डित श्री मन्नारायण स्वामी ने हमें बताया कि गणित की दृष्टि से भी 'हं सः' दोनों एक सामर्थ्य वाले हैं। अकार से गणना करने पर हकार (ह) उनचासवां (४६ वां) वर्ण है। उस पर स्थित अनुस्वार पन्द्रहवें नम्बर पर आता है। 'हं' की शक्ति ६४ है—(४६+१५=६४)। इसी प्रकार अकार से गणना करने पर सकार (स) अड़तालीसवां (४८ वां) वर्ण है और उसके पीछे विसर्ग का सोलहवां (१६ वां) नम्बर आता है। सः की शक्ति ६४ है (४८+१६=६४) अतः 'हं' और 'सः' दोनों सत्ता वाले परमार्थ में एक ही तत्त्व हैं। सः शक्ति है 'हं' शक्तिवान् है। शक्ति से शक्तिवान् भिन्न नहीं होता अतः शक्ति व शक्तिवान् एक ही निर्भेद तत्त्व है। हंसः मन्त्र प्राण शोधन के माध्यम से सिद्ध होता है। शोधित प्राण स्थिर हो जाता है। प्राण स्थिर होने पर हं और सः का एकत्व सिद्ध होता है। वही आत्मा जब विषयों से बंध जाता है तो जीव कहलाता है और जब विषयों से अलिप्यमान रहता है तो मुक्त हो जाता है। ममता से जीव कहलाता है और असंगता से केवल अद्वितीय परमात्मा कहलाता है। सकार में से विषयलोलुपता और ममता शोधित करने पर वह हकार अर्थात् परमात्मा ही हो जाता है, क्योंकि परमार्थ दृष्टि से वह जीव सदा से ही परमात्मा है और रहेगा भी।

हंस योग का साधना विधान

अब हंस मन्त्र जप का अथवा हंसाख्य महायोग का साधना विधान बताते हैं। समस्त हंस शास्त्र में हंस जप विधान सबसे महत्त्वपूर्ण विषय है। इसे सावधानता से पढ़ना समझना चाहिये। यह गुरु गम्य विषय है। सिद्ध गुरु जैसे बतायें वैसे ही साधना

करनी चाहिये। दो-चार विशेष बातें बताई जाती हैं। पहली तो यह है कि यह अजपा जप है, इसका जप स्वतः ही होता है। साधक को श्वास की गतिविधि पर मन की वृत्ति लगानी पड़ती है।

सिद्ध, पद्म, स्वस्तिक अथवा सुखासन पर बैठ जाये, हथेलियों को उलटा करके पांव पर जमा लें, मेरु दण्ड सीधा कर ले। मन को श्वांस के साथ लगा ले। श्वास त्यागते समय मन से ही ध्वनि करे, जीभ से नहीं। श्वांस लेते समय सः की ध्वनि मन से करे। इस प्रकार प्रारम्भ में १५ मिनट अभ्यास करे। काल पाकर सुषुम्ना में प्राण प्रवेश करेगा, पुनः आज्ञा चक्र का भेदन होगा और नाद सुनाई पड़ेगा। नाद में मन बँध जायेगा और पीछे नाद में मन लय हो जायेगा और उन्मनी अवस्था प्राप्त होगी। यही जीवन्मुक्ति, सहजावस्था, मनोन्मनी समाधि आदि भिन्न नामों से कही जाती है।

कुछ योगाचार्यों के अनुसार मन को विचारों से शून्य करके श्वास के साथ लगा दे और उसकी गतिविधि को तटस्थ होकर निरीक्षण करे श्वास की गतिविधि में हस्त-क्षेप न करे, केवल निरीक्षण करे।

यथात्मनः प्राणगतिः स्वाभावात्,
अन्तर्बहिश्चापि भवेत् सुशान्ता।
तथैव सेयं सुनिरीक्षणीया,
न योजनीया न निरोधनीया॥

जब तक प्राण की गति स्वभाव से अपने आप भीतर बाहर से शान्त न हो जाये अर्थात् न भीतर से श्वास बाहर आये और न ही बाहर से वायु भीतर जाये तब तक इस प्राण गति का अच्छे प्रकार निरीक्षण करे, यानी मन को इधर-उधर न भागने दे। श्वास को अपनी इच्छा से न तो चलाये और न ही रोके। काल पाकर प्राण लय हो जायेगा।

महावाक्योपनिषद् में इस प्रकार जप-विधि लिखी है :—

असौ आदित्यो ब्रह्म इति अजपयोपहितं हंसः सोऽहम्। प्राणापानाभ्यां प्रतिलोमानुलोमाभ्यां समुपलभ्य एवं साचिरं लब्ध्वा त्रिवृदात्मनि ब्रह्मण्यभिध्यायमाने सच्चिदानंदः परमात्माविर्भवति।

वह आदित्य ब्रह्म है। अजपा गायत्री मन्त्र हंसः उपाधि से युक्त ब्रह्म ही जीव है और वह मैं हूँ। मन, बुद्धि, अहंकार, प्राण, ज्ञानेन्द्रियां, कर्मेन्द्रियां, स्थूल, देह आदि उपाधियों से ढका हुआ ब्रह्म ही जीवात्मा, हंस बना हुआ है परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। उपाधियों के योग से जीवात्मा भासता है। उपाधि रहित होने पर वही हंसः विपर्यय क्रम से 'सः अहम्, सोऽहम्' है यानी वह पर-ब्रह्म परमात्मा मैं ही हूँ। यह पूर्व में बता चुके हैं कि 'हं' अपान वृत्ति को कहते हैं, सः प्राण वृत्ति को कहते हैं। जीवात्मा जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त हंसः हंसः अजपा जप करता रहता है। इस मन्त्र का प्रतिलोम, उल्टा करे यानि सोऽहम् करे, पुनः उसका अनुलोम उल्टे का उल्टा करे यानि सोऽहम्, 'हंसः सोऽहम्' इस प्रकार मन से मन्त्र को उच्चारित करता हुआ वृत्ति लगाये कुछ काल अभ्यास के उपरान्त प्राण सुषुम्ना में

गमनागमन करेगा। पुनः आज्ञाचक्र में स्थित बिन्दु का भेदन करेगा और मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक गतिवान होगा। नाद की अनुभूति होगी। नाद के दस उपभेद हैं। प्रथम नौ नादों को छोड़ कर दसवें नाद का अभ्यास करे। नाद में मन लय हो जायेगा। आगे क्या बताया जाये, स्वयं करके अनुभव कर लें। आज्ञाचक्र भेदन के पश्चात् श्री गुरु के हाथ में डोरी आ जाती है, उनकी अप्रतिहत आज्ञा के अनुसार अग्र पद रखते हुये साधक मंगलमय धाम की दिशा में गमन करे। उनसे दर्शित पथ निष्कण्टक, निरापद होता है।

वह प्राण रूप हंस, हंसः मन्त्र के अभ्यास से पुनः प्रकाशमय नाद में परिणत हो जाता है। उस स्थिति का चिरकाल तक अभ्यास करे। त्रिवृत्त ओंकार (अ+उ+म) जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, अवस्था विश्व तैजस, प्राज्ञ नामक जीव स्थूल, सूक्ष्म, कारण देहों का द्योतक है और ये तीनों उपाधियाँ हैं। उस ओंकार से प्रतिपाद्य अमात्र ब्रह्म के साथ 'सोऽहम्' (वह मैं हूँ) मन्त्र से हंसाख्य जीवात्मा का एकत्व स्थापित करने पर सच्चिदानन्दघन परमात्मा के स्वरूप का आविर्भाव होता है, अर्थात् उसके साथ जीव को अभेद प्रतिष्ठा हो जाती है। ओं और सोऽहम् एक ही वस्तु है। सोऽहम् मन्त्र में स्थित स और ह् का लोप करने से ओं रूप व्यक्त होता है। अ+उ+म=ॐ। यही ओं वम अर्थात् शिव है, (उ+अ+म), यही ओं उमा अर्थात् पार्वती, ब्रह्म विद्या है (उ+म+अ)। 'सोऽहम्' शिव शक्त्यात्मक मन्त्र है। शक्ति का शिव में लय होने से एक अद्वितीय अनिर्वचनीय ब्रह्म तत्त्व रहता है।

गीता के चौथे अध्याय के २९ वें मन्त्र में लिखा है :—

> अपरे नियताहाराः
>
> प्राणान्प्राणेषु जुह्वति ॥२९॥

श्रीधर स्वामी इस पर टीका लिखते हुए कहते हैं :—

दूसरे यानी आहार संकोच का अभ्यास करनेवाले यह भावना करते हैं कि शोषित इन्द्रियों में उस-उस इन्द्रिय वृत्ति का लय ही होम है।

यद्वा अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथा परे इति अनेन पूरक रेचक योगे वर्तमानयोर्हंसः सोऽहमिति अनुलोमतः प्रतिलोमतश्चाभिव्यज्यमानेन अजपामन्त्रेण तत्त्वं पदार्थैक्यं व्यतिहारेण भावयन्तीत्यर्थः। तदुक्तं योग शास्त्रे—

> सकारेण बहिर्याति
>
> हकारेण विशेत्पुनः।
>
> प्राणस्तत्र स एवाहं
>
> हंस इत्यनुचिन्तयेत् ॥

दूसरे साधक अपान में प्राण का होम करते हैं। इस श्लोक से यह अर्थ निकलता है कि पूरक रेचक प्राणायाम के आवर्तन (चक्कर में) 'हंसः' 'सोऽहम्' 'हंसः' मन्त्र का अनुलोम प्रतिलोम के बहाने 'तत् त्वम असि' इस महावाक्य के अन्तर्गत तत् तथा त्वम इन दो पदों को एकत्व की भावना होती है।

योग शास्त्र में लिखा है—सकार करता हुआ श्वास (अपान) बाहर निकलता है और हकार करता हुआ श्वांस (प्राण) पुनः भीतर प्रवेश करता है। 'सः अहम्' वह मैं ही हूं। '(अ) हंसः' मैं वही हूं, इस प्रकार उलट पुलट कर श्वास के पीछे-पीछे चिन्तन करे। इस प्रणाली में श्वांस के साथ हंसः मन्त्र के अर्थानुसन्धान पर जोर है।

एक अन्य विधि निर्दिष्ट करते हैं :—

प्राणादौ च विसर्गे वै
अकार स्तिष्ठति सदा।
तत्र ध्यात्वा स्वयं
सिद्धिर्जायते हंस जापिनाम् ॥

—श्री विद्याबिन्दु प्रकाश (अमुद्रित)

श्वांस खींचने (सः) और त्यागने (अहम्) के मध्य में सदा अकार (अ) रहता है (सः+(अ)+हं)। उस अकार पर मनोवृत्ति अटकाने से हंस जापियों को स्वतः ही सिद्धि प्राप्त होती है। अकार पर यानी प्राण अपान की सन्धि पर किंचित् लघुकाल मन को लगाने से सुषुम्ना पकड़ में आ जाती है, और योग का द्वार खुल जाता है। यह बात पहले कही जा चुकी है कि हंसः मन्त्र गुरु-मुख से प्राप्त करना चाहिये। गुरुओं की विधियां गुरु लोग ही जानते हैं, उनकी शक्ति अपार और करुणा निःसीम होती है।

हंसः जप, कुण्डलिनी जागरण नादानुभूति ये सब अन्योन्याश्रित साधन हैं। हंस जप से भी नादानुसन्धान होता है, कुण्डलिनी जागरण से भी। हंस मन्त्र से भी कुण्डलिनी जागरित होती है। सब का प्रयोजन लय में है। लय से आगे पुरुषार्थ साध्य नहीं, क्योंकि मन बुद्धि फिर काम नहीं करतीं। यदि करती हों, तो लय नहीं हुआ है ऐसा समझना चाहिये। लय होने पर बाह्य व्यवहार का लोप हो जाता है।

इन्द्रियाणां मनो नाथो
मनोनाथस्तु मारुतः।
मारुतस्य लयो नाथः
स लयो नादमाश्रितः ॥

—हठयोग प्रदीपिका ४।२९

इन्द्रियों का स्वामी मन है, मन का स्वामी प्राण है, प्राण का नाथ मन का लय है और मन का लय नाद के आश्रित है। जिनको ब्रह्मतत्त्व साक्षात्कार में विचार से सफलता नहीं मिलती उन्हें नादानुसन्धान से तत्त्व बोध हो जाता है। योग तारावली में भगवत्पाद (आदि गुरु भगवान् शंकराचार्य) लिखते हैं :—

सदाशिवोक्तानि सपादलक्ष-
लयावधानानि वसन्ति लोके।
नादानुसंधान समाधिमेकं
मन्यामहे मान्यतमं लयानाम् ॥२॥

भगवान् सदाशिव से कहे हुए लय प्राप्ति के सवा लाख विधियां संसार में प्रसिद्ध हैं, लेकिन एकमात्र नादानुसन्धान को ही समस्त लय साधनों में समाधि प्राप्ति का सर्व श्रेष्ठ साधन हम मानते हैं।

नादानुसंधान नमोऽस्तु तुभ्यं
त्वां साधनं तत्त्वपदस्य जाने।
भवत्प्रसादात्पवनेन साकं
विलीयते विष्णु पदे मनो मे ॥४॥

हे नादानुसन्धान ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूं। मैं तुम्हें आत्मतत्त्व का साधन जानता हूं। आपकी कृपा से प्राण के साथ मेरा मन विष्णुपद (समाधि) में लीन हो जाता है। जिस नादानुसंधान की स्तुति भगवत्पाद करते हैं, उसकी प्राप्ति अनायास ही हंस योगियों को होती है।

कपाल कुहर के भीतर प्राण सहित मन घुसने पर क्या-क्या होता है, यह साधना करने वाला ही जान सकता है। संक्षेप में कहते हैं कि आज्ञाचक्र भेदन होने पर बिन्दु, कला, रोधिनी, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिका, समना, उन्मनी तथा महाबिन्दु योग भूमिकाएं क्रमशः प्राप्त होती हैं। हंस योग ही महाबिन्दु तक पहुँचा देता है। यही परम गति है।

हंस योग में सिद्धि सहायक कुछ निर्देश देते हैं। भगवत्पाद ने योग तारावली में लिखा है:—

उन्मन्यवस्थाधिगमाय विद्वन्
उपायमेकं तव निर्दिशामः।
पश्यन्नुदासीनतया प्रपंचं
संकल्पमुन्मूलय सावधानः ॥१०॥

हे विद्वान् ! उन्मनी अवस्था प्राप्त करने के लिये तुम्हे एक उपाय बताते हैं। इस दृश्य जगत को उदासीनता से देखते हुये संकल्प को मूल से खोद कर फेंक दो और सावधान हो जाओ। बड़ौत वाले स्वामी सच्चिदानन्दाश्रम जी महाराज कहा करते 'जरा उकस कर (ऊंचे उठ कर यानी तटस्थ साक्षी होकर) देखो।' जब अपने को द्रष्टा मात्र जान कर जगत पर दृष्टि फेंकोगे तो संकल्पों का उत्थान-पतन शिथिल पड़ जायेगा।

स्त्रीणां चरणौ दृष्टि-
र्बाह्यैषा क्रिया सदा।
अन्तरे रोधिनी दृष्टिः
सद्यस्तत्र प्रवेशनम् ॥

—श्री विद्याबिन्दु प्रकाश (अमुद्रित)

बाह्य जगत में यदि शक्तियों को देखने का अवसर पड़े तो अपनी दृष्टि सदा उनके चरणों में रक्खे और भीतर में चित्त वृत्ति के निरोध का अभ्यास करे। इस बाह्य और भीतर की क्रिया के संयोग से काल पाकर एकाग्रता प्राप्त होगी और सुषुम्ना मार्ग से प्राण आज्ञाचक्र में प्रवेश करेगा।

हृदि प्राणान् बहिः कामान्
संन्यस्य ब्रह्मचारिणः।
हं देहाध्यसितं भावं
यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥

—श्री विद्याबिन्दु प्रकाश (अमुद्रित)

महाबिन्दु (ब्रह्म) में जाने की इच्छा करने वाले प्राण को हृदय में रोकें यानी प्राण स्थिर करें, बाह्य विषयों की कामनाओं को त्यागें। हंसः मन्त्र के प्रथम अक्षर 'हं' जो कि देह में अहङ्कार भाव का सूचक है, को लय करें और दूसरे अक्षर सः को अंगीकार करें। यह 'सः' (ब्रह्म) बुद्धि से परे की वस्तु है, अर्थात् उस परमात्मा को परमात्मा बन कर जानें, क्योंकि उसका कोई साक्षी नहीं है।

चिन्मानसे सरसिजं विहरन्ति हंसाः
पक्षावुभौ सुरशशी सुष्मणा तुण्डः।

चित्रागति कृत सुशंखिनी-हंस गीताः
ब्रजे स्थितात्मनि स्वयं प्रतिभाति ब्राह्मी॥
—श्री विद्याविन्दु प्रकाश (अमुद्रित)

चिन्मय मानसरोवर में जहाँ सहस्रदल कमल खिला हुआ है, हंस (हंस योगी) विहार करते हैं। इड़ा पिंगला नाड़ियाँ हंस की दोनों पाँख हैं, सुषुम्ना नाड़ी उसकी आगे की चोंच है। चित्रा नाड़ी में गतिवान् होकर ब्रह्माण्ड में विचरण करते हैं, सुन्दर शंखिनी नाड़ी में हंस का कलरव सुनते हैं और जब ब्रह्मा नाड़ी में स्थित हो जाते हैं यानी कूटस्थ बन जाते हैं तो ब्राह्मी स्थित स्वयं प्रकाशित हो जाती है।

आप ने यह भी देख लिया होगा कि शास्त्रों में श्वास 'हकारेण बहिर्याति' कहीं 'सकारेण बहिर्याति' लिखा है। इसमें कोई विरोध नहीं जानना क्योंकि हकार सकार एक ही हैं।

श्री विज्ञान भैरव ग्रंथ में मनोलय, समाधि के शताधिक उपाय बताये हैं, उनमें हंस योग भी एक उपाय लिखा है और उसकी साधना प्रणाली भी बताई है। यथा :—

मध्य जिह्वे स्फारितास्ये
मध्ये निक्षिप्य चेतनाम्।
होचारं मनसा कुर्व-
स्ततः शान्ते प्रलीयते ॥८१॥

जिह्वा को अन्तराल यानी कपाल कुहर में उलट कर लगाये, मुख को किंचित भीतर ही संकुचित कर ले, चेतना यानी दृष्टि को भ्रू मध्य में स्थिर करके मन से 'हंसः-सोऽहम्' मन्त्र का उच्चारण करे। इस प्रकार अभ्यास से कुछ काल में ही मन प्राण सहित शान्तपद (ब्रह्म) में प्रलीन हो जायेगा। प्रयोजन यह है कि खेचरी मुद्रा बांध कर हंस मन्त्र का जप करे। विवेक मार्तण्ड ग्रंथ में खेचरी मुद्रा का इस प्रकार वर्णन है।—

कपाल कुहरे जिह्वा
प्रविष्टा विपरीतगा।
भ्रुवोरन्तर्गता दृष्टि-
र्मुद्रा भवति खेचरी ॥

जिह्वा को उलट कर तालुमूल में लगाने तथा दृष्टि को भ्रू मध्य (आज्ञाचक्र) में लगाने से खेचरी मुद्रा बनती है।

गीता में भी भगवान् कृष्ण ने कहा है—

स्पर्शान् कृत्वा बहिर्बाह्यां-
श्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः।
प्राणापानौ समौ कृत्वा
नासाभ्यन्तर चारिणौ ॥५।२७॥

हे अर्जुन! बाह्य विषयों का चिन्तन न करते हुये तथा नेत्रों (दृष्टि) को भ्रू मध्य में स्थिर करते हुये नासिका के भीतर चलने वाले प्राण और अपान को सम करते हुये अर्थात् क्षीण करते हुये (ध्यान करे)।

प्रभु-प्रार्थना

[श्री श्यामलालजी खन्ना, भूतपूर्व आचार्य श्री योगसाधन आश्रम शिमला]

भारत भाग्य सुभागा भाई भाग्य विधाता आये हैं।
योगेश्वर प्रभु रामलाल बन योग उजाला लाये हैं॥
अन्धकार हो छिन्न-भिन्न सब ज्ञान से जगमग जग होवे।
उठे दुई का बोदा पर्दा विश्व प्रेम घट-घट होवे॥
जग का सब कल्याण करेंगे विश्वनाथ जी आये हैं।
योगेश्वर प्रभु रामलाल बन योग उजाला लाये हैं॥
रोग भोग का खत्म जमाना राम प्रभु ने है करना।
दुर्बलता दुख दूर भगा कर योग शक्ति भीतर भरना॥
स्वर्णिम युग उज्ज्वल लाने को राम प्रभु फिर आये हैं।
योगेश्वर प्रभु रामलाल बन योग उजाला लाये हैं॥
यौगिक साधन भूल गये तब हंसी जगत में करवाई।
प्रभु की शरणागत को तज के क्यों चाहत हो प्रभुताई॥
तत्व वेद का समझाने को रामलाल प्रभु आये हैं।
योगेश्वर प्रभु रामलाल बन योग उजाला लाये हैं॥
पिंड में है ब्रह्माण्ड यह सारा आतम रूप हमारा है।
जलचर, थलचर, नभचर सब में एकराज ही प्यारा है॥
उसी एक की करो बन्दना यह उपदेश सुनाये हैं।
योगेश्वर प्रभु रामलाल बन योग उजाला लाये हैं॥
कहने सुनने और पढ़ने से आतम साक्षात्कार न हो।
योगाभ्यास करो नित भाई इस बिन बेड़ा पार न हो॥
आओ जिसने पार उतरना योग जहाज बनाये हैं।
योगेश्वर प्रभु रामलाल बन योग उजाला लाये हैं॥
नेती, धोती, बस्ती, न्योली, आसन प्राणायाम करो।
स्वस्थ बनाओ अपने तन को फिर मन को बलवान करो॥
करो धारना, ध्यान, समाधी यह मारग दिखलाये हैं।
योगेश्वर प्रभु रामलाल बन योग उजाला लाये हैं॥
जो जो आया शरण प्रभु की उस-उस का कल्याण किया।
मल-विक्षेप आवरण हटा कर उसको आतम-ज्ञान दिया॥
योग के साधन नर-नारी को सुन्दरतम ही सिखलाये हैं।
...मलाल बन योग उजाला लाये हैं॥

मोक्ष का स्वरूप

[श्री ओमप्रकाश पालीवाल]

अध्यात्म जगत में मोक्ष के विषय में बहुत कुछ विचार हुआ है। मोक्ष का स्वरूप निर्णय करने में तो कई दार्शनिकों के सिद्धान्त परस्पर में विलक्षण प्रतीत होते हैं। कारण यह है कि सब लोगों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से विचार किया है।

मोक्ष के स्वरूप और दार्शनिकों के सिद्धान्तों पर विचार करने से पूर्व यदि हम मोक्ष शब्द के अर्थ पर ध्यान दें तो इस विषय के बहुत से प्रश्नों का स्वयमेव समाधान हो जायगा।

'मोक्ष' और 'मुक्ति' इन दोनों शब्दों का शाब्दिक अर्थ है छुटकारा। किससे छुटकारा? इसके उत्तर में महर्षि गौतम ने न्याय दर्शन में कहा है :—

तदत्यन्त विमोक्षोऽपवर्गः।
(१।१।२२)

अर्थात् दुःख की अत्यन्त निवृत्ति होना ही मोक्ष है। मोक्ष के लिए न्याय दर्शन में 'अपवर्ग' शब्द का प्रयोग किया गया है। जिसका अर्थ है छुटकारा। वेदान्ती के अनुसार यह लक्षण ठीक नहीं है क्योंकि श्रुतियों में मोक्ष के विषय में कहा गया है—'अत्र ब्रह्म समश्नुते' यहां ब्रह्मानन्द का उपभोग करता है। इसलिए ऐसा लक्षण करो कि दुःखात्यन्त निवृत्ति पूर्वक जहां ब्रह्मानन्द की प्राप्ति है, वह मोक्ष है। नैयायिक कहता है कि दुःखनिवृत्ति पुरुषार्थसाध्य है, आनन्द प्राप्ति यत्नसाध्य नहीं, वह तो आत्मा को स्वभावतः प्राप्त होगी, इसलिए वह लक्षण नहीं—जैसे मलिन वस्त्र का मल दोष दूर करना कष्ट साध्य है परन्तु मैल निकाल डालने पर शुद्धता स्वतः प्राप्त हो जाती है—सफेदी के लिए अन्य पुरुषार्थ अपेक्षित नहीं होता। ऐसे ही दुःख निवृत्ति होते ही आनन्द प्राप्ति हो जाती है। यथा बृहदारण्यकश्रुति :

"तस्य तावदेव चिरं यावन्न
विमोक्ष्येऽथ सम्पत्स्ये"

अर्थात् इसको दुःखों से छूटने की देर है फिर तो सम्पत्ति है।

महर्षि पतञ्जलि ने मोक्ष के लिए 'कैवल्य' शब्द का निर्धारण किया है। 'कैवल्य' शब्द का अर्थ है 'केवल वही होना' अर्थात् आत्मा अपने आप में हो और किसी के साथ उसका सम्बन्ध न हो। यद्यपि मोक्ष शब्द के अर्थ के साथ जितना साक्षात् सम्बन्ध 'अपवर्ग' का है उतना कैवल्य का नहीं है तथापि भावार्थ जैसे 'कैवल्य' से व्यक्त होता है वैसा न तो मोक्ष शब्द से और न 'अपवर्ग' से ही। मोक्ष और अपवर्ग दुःखनिवृत्ति पर ध्यान आकर्षित करते हैं और 'कैवल्य' दुःख-निवृत्ति के अनन्तर अवस्था विशेष पर। योग दर्शन के अनुसार चेतन आत्मा की अपने

स्वरूप में स्थिति को ही मोक्ष बतलाते हुए कहा है :—

"पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूप प्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति"। (यो० ४। ३४)

अर्थात् पुरुषार्थ से शून्य हुए गुणों का प्रलीन होना कैवल्य है अथवा अपने स्वरूप में अवस्थिति हुई चिति शक्ति 'कैवल्य' है गुणों की प्रवृत्ति भोग और अपवर्ग के लिए है। और भोग और अपवर्ग पुरुषार्थ हैं। ये गुण जो शरीर इन्द्रिय और बुद्धि के रूप में परिणत हुए हैं, वे जब पुरुष के लिए भोग और अपवर्ग सम्पादन कर देते हैं, तो फिर उस पुरुष के लिए इनका कोई प्रयोजन शेष नहीं रहता, तब ये पुरुषार्थ से शून्य हुए गुण अपने अपने कारण में लीन हो जाते हैं। लय का क्रम यह है। व्युत्थान, समाधि और निरोध के संस्कार मन में लीन होते हैं, मन अस्मिता में, अस्मिता बुद्धि में, बुद्धि का अव्यक्त प्रकृति में लीन होती है। यह जो गुणों का लीन होना है, यह कैवल्य है, प्रकृति का पुरुष से अलग होना है। इस अवस्था में चितिशक्ति अपने स्वरूप में अवस्थित होती है। यह गुणों का लीन होना इसलिए कैवल्य है कि आत्मा (पुरुष) को भोग देने के लिये प्रवृत्त हुई प्रकृति जब गुणों को कार्य रूप में परिणत करती है तो गुणों में उत्तरोत्तर कारण कार्य भाव उत्पन्न होकर कार्यक्षमता हो जाती है और जब ये गुण अपवर्ग दिलाने को प्रवृत्त होते हैं तो क्रमानुसार अपने-अपने कारण में लीन होते जाते हैं इस भाव को इसलिए 'कैवल्य' कहा गया है कि ऐसा होने से ही पुरुष के भोग समाप्त होते और कालान्तर में मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार का आत्मा से सम्बन्ध नहीं रहता। इनका सम्बन्ध ही बन्धन है—जब इनसे सम्बन्ध नहीं रहा तो वही कैवल्य है। उस अवस्था में, जब कि गुण तो अपने कारण में लीन होते-होते प्रकृति में लीन हो गये—गुणों के भोक्ता अर्थात् बुद्धि को भोग्य और अपने को भोक्ता मानने वाले सवृत्तिक मन के अधिष्ठाता पुरुष का क्या होता है? क्या वह नष्ट हो जाता है या लुप्त हो जाता है? महर्षि कहते हैं कि वह नष्ट नहीं होता, उसका परिणाम नहीं होता—वह सदा रहने वाली अलौकिक सत्ता है, उसकी उस समय अपने स्वरूप में स्थिति होती है। जैसे दीपक अपने आप को भी प्रकाशित करता है और अपने सामने आए हुए घटपटादि पदार्थों को भी प्रकाशित करता है। यदि घटपटादि पदार्थ न हों तो उनके अभाव को ही प्रकाशित करता है। इसी प्रकार मन-बुद्धि में पड़े हुए प्रतिबिम्ब को भी आत्मा प्रकाशित करता है और जब मन बुद्धि नहीं होते तब भी प्रकाश ही करता है। मन बुद्धि बिना जो आत्मा का प्रकाशित होना है, यही आत्मा के स्वरूप में अवस्थिति है—यही उसका कैवल्य अर्थात् केवल निर्गुण होना है। इसी को मोक्ष कहते हैं। इस विषय में श्रुति भी यही कहती है। महर्षि सनत्कुमार ने नारद को उत्तर दिया है :—

'स भगवः कस्मिन् प्रतिष्ठित इति ?
स्वे महिम्नीति।'

अर्थात् तब वह किसमें प्रतिष्ठित होता है? अपनी महिमा में अर्थात् अपने स्वरूप में।

मोक्ष में आनन्द प्राप्ति या ब्रह्माकारता के सम्बन्ध में योग सूत्रों में कुछ नहीं कहा गया। कारण यह है कि सुख-दुःख की अनुभूति अन्तःकरण के द्वारा ही होती है और अन्तःकरण के साथ सम्बन्ध होना तथा उसके धर्मों का अपने (आत्मा) को धर्मी मानना ही मिथ्या ज्ञान है। मिथ्या ज्ञान के रहते मोक्ष नहीं हो सकता। तब मोक्ष में आनन्द किस कारण से भोगा जायगा ? बिना कारण के भोग असम्भव है और बिना भोग के आनन्द की सिद्धि कठिन है, तो फिर भोग या प्राप्ति कैसी ? यह स्वरूप स्थिति ही हुई। कहा जा सकता है कि चेतनरूपता या चितिशक्ति की स्वरूपस्थिति भी तो सन्देह भरी है—चेतनता को किस कारण से अनुभव करता है, क्योंकि अन्तःकरण तो वहाँ है नहीं। बात यह है कि करण के द्वारा अपने से भिन्न पदार्थों का अनुभव होता है—अपने स्वरूप के लिए—अपनी सत्ता के ज्ञान के लिए किसी करण की आवश्यकता नहीं है जैसा कि बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा है :—

'येनेद ँ सर्व विजानाति तं केन विजानीयात विज्ञातारमरे केन विजानीयात् ।' (४।५।१५)

अर्थात् 'जिस (आत्मस्वरूप) से सबको जानता है उस (आत्मस्वरूप) को किस (करण) से जाने, अरे जानने वाले को किससे जाने !' इसीलिए महर्षि पतञ्जलि ने बिना किसी करण या करण की क्रिया के आत्मा की स्वरूपस्थिति को मोक्ष माना है।

आत्मा को सच्चिदानन्दस्वरूप मानना, समझाने के लिए तो उपयुक्त हो सकता है ; परन्तु यदि इस पर आग्रह करके सिद्धान्त मान लिया जाय तो वेदान्ती के साथ इस विषय में योग शास्त्रों का मतभेद हो जाना अनिवार्य है। योगी के अनुसार चितस्वरूप और सच्चिदानन्दस्वरूप का अर्थ एक नहीं है क्योंकि सच्चिदानन्दस्वरूप का अर्थ है—सत्स्वरूप चित्स्वरूप और आनन्दस्वरूप होना। एक ही वस्तु तीन स्वरूपों वाली नहीं हो सकती—ऐसा तो हो सकता है कि एक तो उसका स्वरूप हो और शेष उसके धर्म हों। 'जो सत् होता है वह चेतन भी होता है'—इस व्याप्ति को कोई विद्वान स्वीकार नहीं करेगा—क्योंकि घट पटादि जड़ पदार्थ सत् है परन्तु चेतन नहीं है। इसी प्रकार सत्ता रखने वाले पदार्थ आनन्दस्वरूप नहीं कहे जा सकते अतः यही मानना होगा कि आत्मा चित्स्वरूप है और सत्ता आनन्द उसके धर्म (गुण) हैं। क्योंकि जो चेतन होता है वह सत् होता है। इस व्याप्ति का खण्डन नहीं हो सकता।

वेदान्ती के अनुसार आत्मा गुण-गुणी, या धर्म-धर्मी सम्बन्ध से युक्त नहीं है क्योंकि निर्गुण श्रुति उसके ऐसा मानने से भारी सन्देह को प्राप्त हो जाती है। यह ठीक है, परन्तु जो श्रुति गुण गुणीभाव का निषेध कर रही है वह यह भी तो कहती है '**साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च**'—साक्षी आत्मा चैतन्यस्वरूप है, वह केवल है और उसके साथ किसी भी गुण का सम्बन्ध नहीं है। यदि सच्चिदानन्द स्वरूप होना ही श्रुति को अभीष्ट होता तो 'चेता (चिद्रूप)' न कहती श्रुति आत्मा को चैतन्यस्वरूप कहकर अन्य

किसी भी (आनन्दादि) गुण का वर्णन नहीं करती बल्कि 'केवल' कह रही है, इससे सिद्ध है कि आत्मा का वास्तविक स्वरूप केवल 'चैतन्य ही है। उसके साथ आनंदादि नहीं है।

संक्षेप में महर्षि पतञ्जलि का सिद्धान्त यह है कि दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति रूप मोक्ष को अनुभव करने वाला कोई चेतन अपेक्षित है जो दुःखाभावरूप जड़ नहीं हो सकता किन्तु दुःखाभाव का साक्षी—अभाव का द्रष्टा चेतन ही हो सकता है। इसलिए नैयायिक का अपवर्ग बिना 'चेतनस्वरूप में स्थिति' के माने कदापि सिद्ध नहीं हो सकता। और यदि आनन्दप्राप्ति को भाव-पदार्थ माना जाय—दुःखाभाव का दूसरा नाम मात्र न माना जाय तो इस आनन्द को भी कोई भोगने वाला होना चाहिये, क्योंकि बिना चेतन के कोई भोग्य भोगा नहीं जा सकता। ऐसी अवस्था में भोग के लिए किसी करण (मन, इन्द्रियादि) की आवश्यकता माननी होगी परन्तु वेदान्ती ऐसा नहीं मान सकता क्योंकि इससे आत्मा से भिन्न आनन्द रूप कोई भाव पदार्थ सिद्ध होता है जो अद्वैत सिद्धान्त के विरुद्ध है तथा मोक्ष का आनन्द नाश्वान मानना पड़ता है तब यही कहना होगा कि आत्मा के चैतन्य स्वरूप से भिन्न कोई आनन्द पदार्थ नहीं है—इससे भी निर्गुण चेतनस्वरूप में स्थिति ही 'मोक्ष' सिद्ध हुई। इसलिए चाहे नैयायिक हो या वेदान्ती, योग प्रतिपादित कैवल्य की उपेक्षा नहीं कर सकता।

प्रमाद से बचिए

[श्री अवनीश]

प्रमादी मनुष्य समय का मूल्यांकन नहीं कर पाता। समय पर किसी काम को पूरा कर देना उसके बस की बात नहीं रहती। इस तरह वह अपने अहित के साथ दूसरों का अहित भी सदा करता रहता है! सफलता के अभिलाषियों को प्रमाद की दीवाल को तोड़कर जीवन क्षेत्र में साहस के साथ आगे बढ़ने की आदत डालनी चाहिए। इस आदत को अपनाने का एक सरल उपाय यह है कि जब आज का काम कल करेंगे यह विचार आपके मन में आये तब इसके प्रतिकूल इस विचार को जमाइये कि आज का काम आज नहीं किन्तु अब ही इसी क्षण ही आरम्भ करके उसे पूरा करूंगा। इस प्रकार यदि करने लगेंगे तो निश्चय समझिए प्रमाद के पैर जो आपके चित्त पर जमे हैं उखड़ जायेंगे और वह पराजित होकर मैदान छोड़कर भाग जायगा। फिर आप न प्रमादी कहलायेंगे न आलसी और न कर्तव्यहीन।

स्वर्गीय श्री मेहेर बाबा के विचार :—

गूढ़ विद्या तथा आध्यात्मिक जीवन

[प्रेषक–श्री एम० एम० अग्रवाल आगरा]

गूढ़ विद्या अन्य भौतिक शास्त्रों के समान ही एक शास्त्र है। यह जगत तथा मानवीय जीवन से सम्बन्ध रखती है। अन्य विद्याओं तथा गूढ़-विद्याओं में कोई अन्तर नहीं। अन्तर केवल इतना ही है कि अन्य विद्यायें संसार के उन विषयों का अध्ययन कराती हैं जिनका चिन्तन अवलोकन तथा प्रयोग करना सामान्य लोगों के लिए सम्भव होता है। तथा गूढ़ विद्या उन आन्तरिक भौतिक शक्तियों से सम्बन्ध रखती है जिनका चिन्तन अवलोकन तथा बौद्धिक विश्लेषण करना सामान्य लोगों के लिए सम्भवनीय नहीं होता। जिस अनुपात में आत्मा की सुप्त शक्तियां जागृत होती हैं, उसी अनुपात में गूढ़ विद्या का ज्ञान बढ़ता है।

आधुनिक साइकिकल रिसर्च सोसाइटियाँ अर्थात् अन्तः करण की गुप्त शक्तियों का अनुसंधान करने वाली सभाएँ, अन्य विद्याओं की ही भाँति, गूढ़ विद्या को भी समझती हैं। सिद्धान्त की दृष्टि से गूढ़ विद्या, अन्य भौतिक विद्याओं की अपेक्षा, न तो कम उपयोगी है और न अधिक उपयोगी। ये सभाएँ सहयोग-पूर्वक एवं संगठित रूप से गूढ़ विद्या का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करतीं हैं। आत्मा की अमरता, पुनर्जन्म, सूक्ष्म एवं कारण शरीर का अस्तित्व अन्तर्जगत् की विभिन्न भूमिकाएँ विकासवाद के नियम तथा कर्म सम्बन्धी नियम, इत्यादि कुछ मुख्य गुप्त तथ्यों का, समय पर रहस्योद्घाटन करके, सद्गुरुओं ने भी गूढ़ विद्या का थोड़ा सा शास्त्रीय ज्ञान, सर्व-साधारण लोगों को प्रदान करना, आवश्यक समझा है। ऐसे रहस्योद्घाटन से, आत्मिक आकांक्षा तथा साधना को उचित प्रोत्साहन मिलता है; तथा औसत दर्जे के मनुष्य को भी अनन्त सत्य की शोध करने का उत्साह प्राप्त होता है। किन्तु सद्गुरुओं ने गूढ़ विद्या का तत्वविषयक केवल साधारण ज्ञान का ही उद्घाटन किया है। उन्होंने मानव-जाति को गूढ़ तथ्यों का विस्तृत ज्ञान देना उचित नहीं समझा है। उन्होंने मानवता के कल्याण को ही ध्यान में रखकर गूढ़ विद्या के प्रसार को अत्यन्त सीमित रखा है। उन्होंने केवल सिद्धान्त सम्बन्धी संक्षिप्त ज्ञान ही सर्वसामान्य को विदित होने दिया है। विशेष गुप्त शक्तियों को उन्होंने रहस्य-गर्भित ही रहने दिया है; क्योंकि उनका उपयोगक्षम कलात्मक ज्ञान, सर्व सामान्य को प्राप्त होने पर, मानव जाति का अनिष्ट हो सकता है।

दूसरे शास्त्रों की अपेक्षा, गूढ़ विद्या में जानने वाले तथा न जानने वाले में, महान्

अन्तर है। अन्य विद्याओं का अप्रत्यक्ष ज्ञान, अंशतः उन विद्याओं के प्रत्यक्ष ज्ञान का स्थान ले सकता है। किन्तु गूढ़ विद्या के सैद्धान्तिक एवं अप्रत्यक्ष ज्ञान के और उसके प्रत्यक्ष ज्ञान के महत्व में महदन्तर है। गूढ़ तत्वों के सैद्धान्तिक ज्ञान का न तो कुछ महत्व और न उसका कुछ उपयोग है। महत्व और उपयोग तो गूढ़ तत्वों के केवल प्रत्यक्ष ज्ञान का है। यद्यपि गूढ़ विद्या एक महत्वपूर्ण शास्त्र है तथापि उसका कोरा सिद्धान्त सम्बन्धी ज्ञान कुछ भी महत्व नहीं रखता। जिन्हें गूढ़ तथ्यों का स्वयं प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त नहीं है, उनका गूढ़ विद्या का सिद्धान्त सम्बन्धी ज्ञान, ऐसे देशों के वर्णन और समाचार के तुल्य है, जिन्हें उन्होंने अपनी आँखों से कभी नहीं देखा है। गूढ़ विद्या का सैद्धान्तिक ज्ञान वास्तविक गूढ़ तथ्यों की निरी कल्पना है।

शास्त्र की हैसियत से, गूढ़ विद्या अन्य विद्याओं की भाँति ही एक शास्त्र है। किन्तु कला की हैसियत से वह निरुपम है। गूढ़ तथ्यों के सैद्धान्तिक ज्ञान के प्रसार से भी कभी-कभी अनिष्ट एवं अनर्थ की संभाव्यता रहती है; क्योंकि ऐसे ज्ञान के प्रसार से लोगों की व्यर्थ उत्सुकता बढ़ जाती है। गूढ़ शक्तियों को प्राप्त करना आध्यात्मिकता नहीं है। गूढ़ शक्तियों को प्राप्त करने तथा आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने में महान् अन्तर है। जिस प्रकार अन्य भौतिक या वैज्ञानिक आविष्कारों का सदुपयोग या दुरुपयोग किया जा सकता है उसी प्रकार गूढ़ या गुप्त शक्तियों का भी सदुपयोग या दुरुपयोग किया जा सकता है। गूढ़ शक्ति की सहायता से अन्तर्जगत् की उच्चतर भूमिकाओं में सहयोगपूर्वक आध्यात्मिक कार्य करने का विस्तृत क्षेत्र प्राप्त हो जाता है। किन्तु ऐसा सहयोगपूर्ण आध्यात्मिक कार्य तभी किया जा सकता है जब गूढ़ शक्तियों का उपयोग, औरों के आध्यात्मिक कल्याण करने के उद्देश्य से किया जाय। कुछ लोग अपने गम्भीर आध्यात्मिक उत्तरदायित्व को नहीं समझते, तथा अपनी गुप्त शक्ति का दुरुपयोग करके अपना तथा औरों का महान् अहित करते हैं।

नौसिखुआ साधक गूढ़ शक्तियों की साधना कर सकता है, और निश्चित सीमा के भीतर कुछ शक्तियाँ प्राप्त भी कर सकता है। नवीन शक्तियों के प्राप्त होने पर, उसे नवीन आध्यात्मिक उत्तरदायित्व भी प्राप्त होता है। यदि वह इस नवीन आध्यात्मिक उत्तरदायित्व का पालन करने के योग्य नहीं है, तो उसकी नवीन गुप्त शक्ति, उसके लिए वरदान न होकर अभिशाप सिद्ध होगी। गूढ़ शक्ति का जरा भी दुरुपयोग करने से महान् घातक परिणाम होता है। और आत्मा का बन्धन और भी दृढ़ हो जाता है। गूढ़ शक्ति का दुरुपयोग करने से कभी आध्यात्मिक

उन्नति का मार्ग बिल्कुल अवरुद्ध हो जाता है और उन्नत आध्यात्मिक अवस्था से महान् अधः पतन हो जाता है। गूढ़ शक्तियों के प्राप्त होने से साधकों को औरों के ऊपर भयानक विशेषाधिकार प्राप्त हो जाता है; और यदि वह अपनी शक्तियों का अविचार-पूर्वक दुरुपयोग करे, तो वह अपना आध्यात्मिक सर्वनाश तो करता ही है, और साथ ही साथ औरों को भी कुछ कम नुकसान नहीं पहुँचाता।

आध्यात्मिक ज्ञान-सम्पन्न गुरु-जनों के हाथों में, गूढ़ शक्ति सुरक्षित रहती है; तथा वे उसका उपयोग मानव जाति का हित करने के लिए करते हैं। किन्तु वे लोग भी उसका अत्यन्त परिमित एवं अल्प उपयोग करते हैं। गूढ़ विद्या के व्यवहारोपयोगी ज्ञान को विस्तृत उपयोगी करने में स्वाभाविक कठिनाइयां हैं। मानव जाति की लौकिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने तथा उसका भौतिक स्वार्थ पूरा करने में, गुप्त शक्तियों का अधिक उपयोग नहीं किया जा सकता। कर्म के नियम, संसार में, समान रूप से और निर्विघ्न तभी चल सकते हैं, जब लोग उसी नियम के द्वारा शासित सम्भावनाओं के साथ छोड़ दिये जायें। कर्म के नियम में हस्तक्षेप करने से, सामान्य मानवीय व्यापार अनिश्चित, अर्थ हीन एवं अस्त-व्यस्त हो जायगा। यही कारण है कि कार्य. सत्ता से शासित विश्व के क्षेत्र में या कर्म के नियम अधीन मानव जाति के प्रदेश में किसी अनिश्चित, अलौकिक तथा दुर्ज्ञेय तत्व का प्रचार नहीं किया जाता। यही वजह है, कि गूढ़ शक्ति का उपयोग, केवल आध्यात्मिक उद्देश की सिद्धि तक, सीमित है।

सन्त-गण, कभी-कभी, अपने भक्तों की कुछ सांसारिक इच्छा भी पूरी करते हैं। किन्तु सांसारिक विषयों में, उनकी खुद की रुचि नहीं रहती। किन्तु दर असल, वे अपने भक्तों को; संसार से विरक्त करना चाहते हैं। उन्हें संसार विमुख करके आध्यात्मिकता की ओर खींचने के ही उद्देश्य से, वे उनके समक्ष सांसारिक प्रलोभन रखते हैं। छोटे-छोटे बच्चे, स्लेट पर लिखे हुए अक्षरों पर ध्यान नहीं जमाते। अक्षरों पर बच्चों का ध्यान खींचने के लिए, उनके माँ-बाप उन्हें लोभ देते हैं, और मिठाई से बने हुए अक्षर उनको देते हैं। अक्षरों के लोभ के कारण नहीं किन्तु मिठाई के लोभ के सबब, बच्चों का ध्यान मिठाई के अक्षरों पर तुरन्त जम जाता है। ज्योंही बच्चों का ध्यान अक्षरों पर जमने लगता है; और वे अक्षरों में दिल-चस्पी लेने लग जाते हैं; त्योंही मिठाई निकाल बाहर कर दी जाती है। सांसारिक मनुष्य, इसी प्रकार के नन्हे बच्चे हैं। अच्छी बातें सीखने में प्रोत्साहन देने के लिए, जिस प्रकार पिता अपने बच्चों को चॉकलेट देते है, उसी प्रकार सन्तगण अपने संसारासक्त भक्तों की कुछ हानि शून्य सांसारिक इच्छाओं

की पूर्ति करके उन इच्छाओं को छोड़ने तथा सच्ची आध्यात्मिकता को ग्रहण करने का उनका उत्साह बढ़ाते हैं।

संसारी मनुष्य, भौतिक भोग-विलास की तृष्णाओं में ऐसे डूबे रहते हैं कि इन तृष्णाओं की पूर्ति करने के अतिरिक्त उन्हें और कुछ भी नहीं सूझता। सम्भव है, कि अपनी सांसारिक इच्छा पूर्ण करने का इरादा रख कर, वे सन्तों के पास जायें एवं उनकी सेवा तथा सम्मान करें। जब कोई व्यक्ति, किसी सन्त के पास सम्मान-पूर्वक पहुँचता है, तो सन्त का यह कर्त्तव्य हो जाता है, कि सांसारिक इच्छा लेकर आए हुए मनुष्य को भी वह आध्यात्मिक सहायता करे। सन्त को मनुष्य के मन का पूरा-पूरा ज्ञान रहता है। अतः संभव है, कि सन्त उस मनुष्य को आध्यात्मिकता की ओर आसानी से खींचने के इरादे से, उसकी सांसारिक इच्छा पूरी कर दें। किन्तु आध्यात्मिकता की ओर खींचने के उद्देश्य से भौतिक प्रलोभन देना, कोई नियम नहीं है। यह नियम का एक अपवाद है। ज्यादातर, भौतिक लाभ के लिए आने वाले लोगों को, सन्त निरुत्साहित करते हैं। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से सन्तों को किसी स्वार्थपूर्ण गरज से प्रेम करने की अपेक्षा, उन्हें बिना किसी स्वार्थ के प्रेम करना लाख दर्जे बहतर है। उन्हें सिर्फ इसलिए प्रेम करना चाहिए कि वे प्रेम करने योग्य हैं। सच्ची आध्यात्मिक सहायता प्राप्त करने के ही इरादे से, सन्तों के पास जाना चाहिए। कोई दूसरा इरादा लेकर उसके पास पहुँचना उचित नहीं है। सच्ची आध्यात्मिक आकांक्षा लेकर सन्त के पास जाने तथा उनका सहवास करने, से ही परम कल्याण की प्राप्ति होती है।

गूढ़ विद्या का कलात्मक औचित्य इस बात में है, कि उसके व्यावहारिक उपयोग से आध्यात्मिक उद्देश्य की सिद्धि होती है। आध्यात्मिक उद्देश्य के अतिरिक्त अन्य किसी हेतु से, गूढ़ शक्ति का उपयोग वस्तुतः उसका दुरुपयोग है। सांसारिक लाभ के लिए गूढ़ शक्ति का कदापि अवलम्ब नहीं करना चाहिए। उसके द्वारा मनुष्य अपनी सांसारिक तृष्णाओं की पूर्ति कर सकता है किन्तु ऐसा करने में उसकी वास्तविक उपादेयता नष्ट हो जाती है। हृदय को पवित्र करने के लिए, उसका उपयोग करने में ही उसकी वास्तविक उपादेयता है। मानव जाति की निम्नतर इच्छाओं को दूर करने तथा उसके उसके हृदय को शुद्ध करने के लिए, गूढ़ शक्ति एक महान् एवं अत्यन्त प्रभावशाली साधन है। जो लोग इतनी उन्नति कर चुके हैं, कि उनकी अन्तः करण की प्रसुप्त शक्तियाँ अब-तब जागृत होने ही वाली हैं, या जिन लोगों की आन्तरिक शक्तियाँ काफी जागृत हो चुकी हैं, किन्तु उच्चतर भूमिकाओं में उनकी चेतना के खिंच जाने के कारण, उन्हें स्थूल संसार

का पूर्ण ज्ञान नहीं है, खास कर ऐसे लोगों के लिए गुप्त शक्तियों का उपयोग करना, अत्यन्त आवश्यक एवं उपयुक्त हुआ करता है। ऐसे लोगों के साथ, उसी भाषा में बात करना पड़ता है, जिस भाषा को वे समझ सकते हैं। बहुत से ऐसे होते हैं, जिन्हें अनेक गुप्त शक्तियाँ प्राप्त हो चुकी रहती हैं, किन्तु उन्हें भी आध्यात्मिक सहायता की उसी प्रकार जरूरत रहती है, जिस प्रकार सामान्य मनुष्य को। चूँकि उन्हें बहुत सी गूढ़ शक्तियाँ प्राप्त हो चुकी रहती है अतः गुरुजन उनसे दूर रह कर भी आसीन के साथ एवं प्रभाव-पूर्ण ढंग से उनको सहायता पहुँचा सकते हैं। उच्चतर भूमिकाओं पर गुरु-जनों की ज्ञान-पूर्वक सहायता प्राप्त करना, केवल स्थूल माध्यम के द्वारा सहायता प्राप्त करने की अपेक्षा, अधिक फलदायक होता है।

आध्यात्मिक पथ पर आगे बढ़ना तो कठिन हुआ ही करता है, साथ ही साथ अत्यधिक साधकों का यह भी लक्षण होता है कि उच्च भूमिका के आनन्द में, वे इतने मग्न रहते हैं, कि सेवाकार्य के लिए, स्थूल क्षेत्र में उतरना- वे जरा भी पसन्द नहीं करते। सिद्ध पुरुषों का, सातवीं भूमिका में पहुँचकर ईश्वर ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात्, जो अवतरण होता है, उसमें तथा उन्नत साधकों के नीचे उतरने में, अन्तर है। सिद्ध पुरुषों का अवतरण एवं ईश्वरानुभूति के पश्चात् उनका किसी निम्नतर विशेष भूमिका में, कार्य के लिए स्थित होना प्रारब्ध का परिणाम है। पारमार्थिक हेतु से प्रेरित होकर, मानव जाति का आध्यात्मिक कल्याण करने के लिए ही, सिद्ध सद्गुरु प्रारब्ध का उपयोग करते हैं और अवतरित होते हैं। वे जिस प्रकार की आध्यात्मिक सत्ता से सम्पन्न होते हैं, उसी के अनुसार वे किसी विशिष्ट भूमिका में स्थित होते हैं। उदाहरणार्थः- मोहम्मद ईश्वरानुभूति के पश्चात् सातवीं भूमिका में, बुद्ध पांचवीं भूमिका में, तथा अजमेर के मोइनुद्दीन चिश्ती पांचवीं भूमिका में, क्रमशः स्थित थे।

जब साधक दो भूमिकाओं के बीच अटक जाते हैं तब आध्यात्मिक पथ पर आगे बढ़ने के लिए, उन्हें थोड़ा पीछे हटना पड़ता है। दूसरी भाषा में यों कहा जा सकता है कि उच्चतर भूमिका में प्रवेश करने के लिए उन्हें निम्नतर भूमिका में उतरना पड़ता है। उदाहरणार्थ जब साधक तीसरी भूमिका और चौथी भूमिका के बीच में, फँस जाता है तब ऐसे साधक को, चौथी भूमिका पर चढ़ाने के लिए सद्-गुरु उसे तीसरी भूमिका में उतार देता है। उच्च भूमिका से साधकों का इस प्रकार दूसरों के लिये नीचे उतरना उन साधारण लोगों के लिए, लाभदायक होता है जो आध्यात्मिक पथ में प्रविष्ट नहीं हुए रहते, तथा जो संशय के गहन वन में ही भटकते रहते हैं। सद्-गुरु, कभी-कभी किसी साधक के द्वारा, कोई आध्यात्मिक कार्य कराना

चाहते हैं, अतः जिज्ञासु को अपनी वैयक्तिक उन्नति का प्रयत्न स्थगित करने के लिए कहते हैं। आध्यात्मिक पथ की अगली अवस्था को, शीघ्रता तथा सरलतापूर्वक पार करने के लिए इस प्रकार नीचे उतरना मानों एक तैयारी है। यह मानो दो कदम पीछे हटने के समान है। इस प्रकार नीचे उतरना, लाभदायक होने पर भी, साधक के लिए, दूसरों की सहायता करने के लिए अपनी उच्च अवस्था से नीचे उतरना, बड़ा कठिन प्रतीत होता है। पाँचवी भूमिका पर स्थित जिज्ञासु के लिए, नीचे उतरना खास-तौर पर कठिन होता है, क्योंकि पाँचवी भूमिका पर से, अनन्त सत्य दिखाई देने लगता है और उसकी ज्योति प्राप्त हो जाती है। सूफी वाद में यह स्थिति हैरत कहलाती है। इस अवस्था में, अनन्त की ज्योति को छोड़कर, नीचे उतरने में साधक को महान् कठिनाई का अनुभव होता है। किन्तु कभी-कभी अनन्त के प्रकाश में डूबने का लोभ-त्याग कर, संसार के अन्य जीवों के उद्धार के लिए, साधक का नीचे उतरना जरूरी हो जाता है। सद्गुरु ऐसे उन्नत साधकों को नीचे लाने के लिए, अपने खास तरीके का उपयोग करता है। सच तो यह है कि गुरु-जन कल्याण के लिए, साधक को किसी भी अप्रिय अवस्था में नीचे उतार सकते हैं।

अजमेर के सुप्रसिद्ध वली के किस्से से मालूम होगा, कि सद्गुरु किस प्रकार अपने उच्च स्थित शिष्य को नीचे लाता है। अजमेर में इस वली की समाधि अभी तक है, जो एक विख्यात तीर्थ स्थान है। इस वली की आँखें चौंधिया गई थीं। वे निर्निमेष विस्फारित तथा स्फटिक तुल्य दिखाई देतीं थीं। उसकी आँखें हमेशा खुली रहतीं थीं। वह अपनी आँखें बन्द नहीं कर सकता था। उसे खाने पीने की सुध नहीं थी, पांचवीं भूमिका में था। अजमेर का ख्वाजा इस वली का गुरु था। गुरु अपने शिष्य को नीचे उतारना चाहता था। वली के लिए अपने गुरु की आज्ञा मानना कठिन था। इस पर गुरु को चाबी ऐंठनी पड़ी। निम्नलिखित तरीके से गुरु ने शिष्य के होश दुरुस्त किए। उन्होंने पाँच चोरों को, इस वली के निवास-स्थान में आने के लिए प्रेरित किया। पाँचों चोर वली से पांच कदम दूर बैठ गए। और वे अपनी चोरी का माल बाँटने लगे। तुरन्त ही उनमें झगड़ा होने लगा। दो चोरों ने शेष तीन चोरों को जान से मार डाला। इन दोनों ने, लूट के माल को आपस में बाँट लिया, और भाग गए। भागते समय वे वली के निवास-स्थान के पास ही निकले। ज्योंही वे वली के निवास-स्थान के अत्यन्त पास आए, त्योंही वली को साधारण चेतना प्राप्त हुई। इन दुष्टों का सान्निध्य, वली को होश में आने के लिए, काफी था। चोरों के दुष्ट संस्कार

से प्रभावित होकर, वली होश में आया, और उसे दुनियां का ज्ञान हुआ तब उसे सर्व-प्रथम कुछ गौरेये दिखाई दिए। अपनी जागृत शक्ति को अजमाने की उसकी प्रवृत्ति हुई। उसने कहा, 'श्रो गौरेयो, मर जाओ।" गौरेये नीचे गिरे और मर गए। फिर वह बोला, "गौरेयो उठ जाओ।" गौरेये जी उठे। दोनों चोर, वली का यह चमत्कार देख कर, विस्मित हुए। उन्होंने वली से उन तीन चोरों को भी जिन्दा करने की प्रार्थना की, जिनको उन्होंने गुस्से में आकर मार डाला था। इस पर वली ने उन तीन मुर्दे चोरों को लक्ष्य करके कहा, "जी उठो।" किन्तु वे जीवित नहीं हुए। वली के आश्चर्य की सीमा न रही। उसे ऐसा लगा कि उसकी शक्तियां नष्ट हो गई। अपनी शक्ति का निरर्थक उपयोग करने के कारण, उसे महान् पश्चात्ताप हुआ, और वह रोता हुआ अपने गुरु के पास पहुंचा। जब वह गुरु के पास पहुंचा, तो उसने देखा, कि वे तीनों चोर गुरु के पैरों की मालिश कर रहे हैं। यह देखकर, वली अपने निवास-स्थान को वापिस लौट गया। खाने-पीने की उसने पर-वाह न की। वह बहुत दुबला हो गया। वह दस वर्षों तक उसी स्थान पर पड़ा रहा। उस पर सफेद चीटियां भूमने लगीं। और उसके शरीर को खाने लगीं। लोग वली के पास शक्कर लाया करते थे जिसे चीटियां खाती थीं। वली का शरीर शक्कर के ढेर से घिर गया था, अतः वह गंज-ए-शक्कर के नाम से विख्यात हुआ। इस कहानी से यह विदित होता है, कि उन्नत साधकों को भी, आध्या-त्मिक पथ पर आगे बढ़ने के लिए सद्गुरु की सहायता की आवश्यकता होती है।

गंज-ए- शक्कर की कथा से विदित होता है, कि कैसे प्रसंगों पर गूढ़ शक्तियों और गूढ़ तरीकों का उपयोग किया जाता है। किन्तु यह जान लेना आवश्यक है, कि किसी भी गूढ़ दृश्य और गूढ़ शक्ति का कोई वास्तविक निजी महत्व नहीं है। गूढ़ या अगूढ़ घटनाओं का महत्व या तो पूर्णतः भ्रामिक होता है या सापेक्ष। जब किसी वस्तु को मिथ्या महत्व दिया जाता है, तब वह भ्रामक मूल्य धारण कर लेता है, क्योंकि वह वस्तु, अज्ञान जन्य सीमित उद्देश्यों या चंचल तृष्णाओं को, उत्त-जित करती है, या उनको पूर्ति करती हुई सी दिखाई देती है। इन सीमित उद्देश्यों और चंचल तृष्णाओं को अलग करके यदि इन गुप्त चमत्कारपूर्ण दृश्यों या शक्तियों को देखा जाय तो उन पर आरोपित समस्त महत्व तथा अर्थ नष्ट हो जाता है। सत्य की अभि-व्यक्ति या सत्य की अनुभूति की पूर्ति के लिए, कोई साधन स्वरूप वस्तु या अद्भुत घटना, जब महत्व प्राप्त कर लेती है तब सापेक्ष मूल्य का उदय होता है। अद्भुत चमत्कारों को महत्व तब प्राप्त होता है, जब वे दैवी लीला के ही आधारभूत होते हैं। दैवी लीला के

साधन होने के नाते, सापेक्ष होने पर भी वे अर्थपूर्ण रहते हैं।

अज्ञानपूर्वक या सज्ञानपूर्वक, अनेक मनुष्य गूढ़ चमत्कारों को अनावश्यक महत्व देते हैं। गूढ़ चमत्कारों को अनावश्यक महत्व देते हैं। गूढ़ चमत्कारों को ही वे आध्यात्मिकता समझने की भूल करते हैं। उनके लिए चमत्कार तथा भूत प्रेत के दृश्य ही अत्यन्त दिलचस्प विषय हैं। चमत्कारों और भूत प्रेतों में दिलचस्पी रखने वाले, आध्यात्मिक विषयों में दिलस्पी रखने वाले लोग समझे जाते हैं। किन्तु, गूढ़ विद्या तथा रहस्यवाद एवं भूत-शास्त्र तथा आध्यात्मिकता में महान अन्तर है। रहस्य वाद या आध्यात्मिकता को साध्य समझना चाहिए तथा गूढ़ विद्या को एक भौतिक साधन। गूढ़ विद्या और आध्यात्मिकता का भेद नहीं समझने से, जटिलताऐं पैदा होती हैं।

सभी किस्म के चमत्कार, दृश्य भौतिक संसार से सम्बन्ध रखते हैं। और भौतिक संसार भ्रम या प्रपंच है। मिथ्या दृश्य होने के कारण वे परिवर्तन के अधीन हैं और कोई भी परिवर्तनशील वस्तु या घटना स्थायी महत्व नहीं रख सकती। अनन्त वस्तु का ज्ञान प्राप्त करना ही परम सत्य का जानना है। गूढ़ जगत का ज्ञान या गूढ़ शक्तियों के संचालन का वह महत्व व मूल्य नहीं है, जो महत्व व मूल्य, ईश्वरानुभूति का है। स्थूल संसार के अन्य दृश्य जिस प्रकार मिथ्या और काल्पनिक हैं। उसी प्रकार गूढ़ शक्ति के चमत्कार भी मिथ्या और काल्पनिक हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से मुख्य बात, केवल दैवी जीवन स्वयं प्राप्त करना है तथा अन्य लोगों को, दैवी जीवन प्राप्त करने में सहायता करना है। दिव्य जीवन को प्राप्त करके प्रतिदिन के कार्यों में उसे व्यक्त करना ही सबसे महत्वपूर्ण बात है। सर्व श्रेष्ठ सत्ता, एवं परम सत्य के सार और महात्म्य में प्रवेश करना और इस आन्तरिक महिमा की श्री और सुरभी को अन्य मनुष्यों के कल्याण एवं पथ प्रदर्शन के लिए, व्यक्त करना ही मानव जीवन का लक्ष्य है। नाम-रूप-मय संसार-में-सत्य, शिव, सौन्दर्य तथा पवित्रता को अभिव्यक्त करना ही यथार्थ जीवन है, और इसी का अक्षय महत्व है। अन्यान्य घटनाओ दृश्यों एवं सिद्धियों का स्वमेव कोई स्थायी महत्व नहीं।

ॐ

सदोपदेश

[श्री भोले बाबा]

क्या क्या करूँ कैसे करूँ, यह जानना यदि इष्ट है ।
तो शास्त्र संत बतायेंगे, जो इष्ट या कि अनिष्ट है ।

श्रद्धासहित जा शरण उन की त्याग निज अभिमान दे ।
निर्दम्भ हो निष्कपट हो, श्रुति संत को सन्मान दे ।।

'मैं' और 'मेरा' त्याग दे, मत लेश भी अभिमान कर ।
सब का नियंता मान कर विश्वेश का ही ध्यान धर ।।

मत मान कर्ता आप को, कर्तार भगवत जान रे ।
तो स्वर्ग द्वारा जाय खुल तेरे लिये सच मान रे ।।

निशि दिन निरंतर बरसती सुख मेघ की शीतल झड़ी ।
भीतर न तेरे जा सके है आड़ ममता की पड़ी ।।

ममता अहंता त्याग दे, वर्षा सुधा की आयगी ।
ईर्षा-जलन बुझ जायगी- चिन्ता-तपन मिट जायगी ।।

ममता अहंता वायु का झोंका न जबतक जायगा ।
विज्ञानदीपक चित्त में तेरे नहीं जुड़ पायगा ।।

श्रुति संत का उपदेश तबतक बुद्धि में नहि आयगा ।
नहि शांति होगी लेश भी नहि तत्त्व समझा जायगा ।।

यदि शांति अविचल चाहता, यदि इष्ट निज कल्याण है ।
संशय रहित सच जान तेरा शत्रु यह अभिमान है ।।

मत देह में अभिमान कर, कुल आदि का तज मान दे ।
'नहि देह मैं' 'नहि देह मेरा' नित्य इसपर ध्यान दे ।।

हिंसा किसी की कर नहीं, जो बन सके उपकार कर ।
विश्वेश को यदि चाहता है, विश्वभर को प्यार कर ।।

जो मृत्यु भी आ जाय तो उस की न तू परवाह कर ।
मत दूसरे को भय दिखा, रह आप भी सब से निडर ।।

विश्वास से कर मित्रता, श्रद्धा सहेली ले बना ।
प्रज्ञा तितिक्षा को बढ़ा, प्रिय न्याय का कर त्याग ना ।।

गम्भीरता शुभ भावना, अरु धैर्य का सम्मान कर ।
हैं आठ सच्चे मित्र ये, कल्याणकर भवभीर-हर ।।

मानस-स्वास्थ्य

[श्री सुधाकर उपाध्याय]

सत् चित् आनन्द-घन परमात्मा का अंश होने के कारण जीव मात्र में आनन्द की मात्रा सहज रूप में पाई जाती है अतएव जन्म लेने के साथ-साथ जीव खेल से नाता अथवा सम्बन्ध जोड़ लेता है और उसमें ही आनन्द मानता है। प्रायः सभी युगों की यही समस्या रही है तदर्थ मानव स्व-बुद्धया प्राप्त साधनों के हेतु प्रयास करता चला आरहा है।

राजनैतिक महापुरुष पराधीनता को अभिशाप समझे। कष्टों का मूल समझ कर महात्मा गाँधी आदि ने राष्ट्र को स्वाधीनता रूपी प्रसन्नता प्रदान की। परन्तु इससे जब आनन्द न प्राप्त हुआ तो देश को विकास का रूप दिया। पर विज्ञान तथा शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी राष्ट्र भी आज आनन्दयुक्त नहीं देखे जा रहे हैं। कुछ लोगों की राय है कि प्रसन्नता की कुंजी वैभव है। प्रायः सम्पत्ति युक्त मानव प्रसन्न रहता है। परन्तु कितने वैभवशाली व्यक्ति आत्म-हत्यादि पाप परायण देखे गये हैं। विपरीत इसके कितने निर्धन अपने फूस की झोपड़ी में रहते हुये भी सूखी रोटी खाकर सन्तुष्ट हैं। वैसे तो यह निर्विवाद सत्य है कि सुन्दर जीवन-यापन के लिये भोजन, वस्त्र, आवास, तथा वैभव की नितान्त आवश्यकता है पर ये वस्तुयें प्रसन्नता नहीं दे सकतीं। यदि यह आनन्द दे पाती तो बुद्ध आदि संसार से विरक्त होकर विविक्तसेवी न बनते।

अतः हमें यह अन्वेषण करना है कि सच्चा आनन्द क्या और कहाँ है? उत्तर भी साधारण सा है। आनन्द मन की एक स्थिति है और मन में ही उसका निवास रहता है। मन ही अस्वस्थ होकर दुःख एवं स्वस्थ होकर सुख का वातावरण अपने चतुर्दिक सृजन करता है। यदि यह चाहे तो इनसे उन्मुक्त होकर परमानन्द की भी प्राप्ति कर सकता है। उपनिषदें यह उद्घोष इसी हेतु करती हैं "उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत" एवं बृहदारण्य उपनिषद् में :—

'असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्यो मा ऽमृतंगमय'।

का महा वाक्य बोल कर हमारा उद् बोधन करती हैं। अर्थात्—उठो, जागो, श्रेष्ठ वस्तु के द्वारा ज्ञान प्राप्त करो, असत्य की ओर नहीं सत्य की ओर चलो। अन्धकार की ओर न हीं प्रकाश की ओर चलो। मृत्यु की ओर नहीं अमृत की ओर चलो। ये वस्तुयें हमें अस्वस्थता

से स्वस्थता की ओर बढ़ाती हैं प्रेरणा प्रदान करती हैं।

यह आनन्द हम न धन से खरीद सकते हैं न बल या बौद्धिक व्यायाम से प्राप्त किया जा सकता है। भौतिक पदार्थों में तो इसका लेशमात्र अंश भी नहीं है। वस्तुतः इसे प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें बाह्य जगत में नहीं अन्तर्जगत में प्रवेश करने का प्रयास करना होगा। वृत्तियों को प्रापञ्चिक जगत से भिलग कर अन्तर्मुखी बनाना होगा। अन्य प्रयत्न व्यर्थ है क्योंकि समुद्र से उद्भूत वाष्प कण मेघ बन कर जैसे भूमि पर उतरते हैं, और भूमि सिञ्चन किया कर के नदी-नद के प्रवाहों के रूप में पुनः उसी सागर-उर्मियों में विलीन हो जाते हैं ठीक उसी प्रकार जीव भी प्रभु के मंगलमय चरणों में स्वयं को विलय करके नाम रूप की उपाधियों से उन्मुक्त हो कर सुखी होता है।

सुखी होइ जिव, जिमि हरि पाई।

ऐसा क्यों नहीं होता फिर दुख किस बात का ?

जब तक मन रोगों से घिरा है, अस्वस्थ है तब तक वह कदापि समाधि को नहीं प्राप्त कर सकता। निष्कर्ष तो यह है :—

एक व्याधि वसमें रहि नर,
ए असाधि बहु व्याधि।
पीडहि संतत जीव कह,
सो किमि लहै समाधि॥

मन को रोगी, बनाने वाले रोगों का नाम गोस्वामी तुलसीदास जी के शब्दों में सुनिये जो हमें राह से भटका रहे हैं :—

सुन हुं तात अब मानस रोगा।
जिन्ह ते दुख पावहि सब लोगा॥
मोह सकल व्याधिन कर मूला।
तिन्ह ते पुनि उपजहि बहु सूला॥
काम बात कफ लोभ अपारा।
क्रोध पित्त नित छाती जारा॥
प्रीति करहि जौं तीनहु भाई।
उपजइ सन्निपात दुखदाई॥
ममता दद्रु कन्डु इरषाई।
हरष विषाद गरह बहुताई॥
पर सुख देखि जरनि सोइ छई।
कुष्ट कुटिलता मन कुटिलई॥
अहंकार अति दुखद डमरुआ।
दम्भ कपट मद मान न हरुआ॥

इन रोगों को नाश के लिये उपाय भी शास्त्र ने बतलाये पर रोग बिना ध्यान-योग के जांयगे नहीं

नेम धर्म आचार तप,
ज्ञान यज्ञ जप दान।
भेषज पुनि कोटिन्ह किये,
नहीं रोग जाहि हरियान॥

परन्तु गोस्वामी जी ने वैद्य अनुपान दवा संयम सब कुछ बतला दिया जिसके द्वारा हम स्वस्थ होकर श्रेयस प्राप्त कर सकते हैं।

मानस रोग के निदान करने वाले वैद्य को सुनिये तथा उसके वचनों को विश्वास पूर्वक पालन कीजिए–

सद्गुरु वैद्य वचन विश्वासा ।
संयम यह न विषय की आशा ।।

जब तक आप का मन विषयों का दास बना हुआ है तब वैद्य की युक्ति और दवा व्यर्थ है। विषयों में विचरण करने वाला मन जब तक वैराग्यवान न बनेगा तब तक एकाग्रता उससे दूर है। बिना एकाग्र मन के दवा लाभ नहीं कर सकती :—

रघुपति भगति सजीवन मूरी ।
अनूपान श्रद्धा मति पूरी ।।

श्रद्धा पूर्वक दवा के सेवन से ही रोग नष्ट हो जाता है—

नीरोग मन की पहचान कैसे कवि करता है निरोगी स्नान करता है उसे भूख लगती है शरीर में बल का सञ्चार होता है मन भी नीरोग हो जाता है तो उसे :—

जानिय तब मन निरुज गोसाईं ।
जब उर बल विराग अधिकाई ।।

जब संसार से चित्त हटकर प्रभु की ओर देखने लगे तब इसे रोग मुक्त मानना चाहिए और सुमित बढ़ जाय और विषय निम्बवत् तिक्त लगने लगे—

सुमति छुधा बाढ़हि नित नई ।
विषय आस दुर्बलता गई ।।

कामी को विषय से प्रीति रहती है उसे उससे वैराग्य नहीं होता :—

काम भुजंग डसत जब जेहीं ।
विषय निम्ब कटुलगत न तेहीं ।।

विषयों से दूर रहने के लिये ही साधन चतुष्टय शमादि सम्पत्तियों को संग्रह करना चाहिये यहीं योग के द्वारा प्राप्त होता है—

तब विमल ज्ञान जल जब सो न हाई ।
तब रह राम भगति उर छाई ।।

सफल होता है।

इस प्रकार के बने हुये स्वस्थ मन से एकाग्रता प्राप्त की जाती है, कहीं एकान्त स्थल में प्रभु के मंगलमय स्वरूप में सद्गुरु के द्वारा बतलाये हुये युक्ति से मन को लगाये, और श्रद्धा पूर्वक लम्बे समय तक साधनों के अभ्यास के बाद यह चञ्चल मन स्थिर होकर एकाग्रता प्राप्त करता है और निमग्न हो जाता है :—

सुखी मीन जिमि नीर अगाधा ।
जिमि हरि शरण न एकहु बाधा ।।

यही जीव का सच्चा प्रायश्चित्त है जिसके द्वारा उसके सात्विक सुख का पटल प्रभु खोल देते हैं।

मनः प्रसादः सौम्यत्वं और प्रभु में अपने मन बुद्धि का निवेशन करके (मनो नाश) या प्राणायामादि क्रिया के द्वारा प्राण निरोध करके या परमार्थ तत्व का दृढ़ अभ्यास करके जीव सुखी हो सकता है क्योंकि मन तथा प्राण एक ही स्थल पर लय होते हैं यह योग का सर्वमान्य सिद्धान्त है। वायु के न चलने पर जैसे गन्ध नहीं फैलता उसी तरह प्राण निरोध के द्वारा मन एकाग्र हो जाता है दोनों में वही सम्बन्ध है जो पुष्प और गन्ध में है उसी दशा में प्रभु की पुकार होती है।

सर्व धर्मान् परित्यज्य,
मामेकं शरणं व्रज ।
अहंत्वा सर्व पापेभ्योः,
मोक्षयिष्यामि मा शुच ।।

इसी का दूसरा नाम अनन्यता भी है।

ब्रह्मलीन--मन

[प्रेमवती एम० ए० (दर्शन) बी० टी० साहित्यरत्न, शास्त्री]

श्री गुरुदेव के झाँसी में दिये गये प्रवचनों के आधार पर :—

श्रीमद्भागवत् गीता के बारहवें अध्याय में जगदात्मा श्रीकृष्ण ने कहा है :—

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धि निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अतऊर्ध्वं न संशयः ॥

हे अर्जुन ! तू मेरे में मन को लगा, मेरे में बुद्धि को प्रवेश कर, तू मेरे को ही प्राप्त होगा इसमें संशय नहीं है ।

अब प्रश्न होता है कि मन को लगायें कैसे? साधारण भजन-कीर्तन आदि मात्र से मन ब्रह्म में क्या इस प्रकार प्रवेश हो जायगा कि हर समय चलते-फिरते, उठते-बैठते ब्रह्मानुभूति बनी रहे ? और शरीर के अवसान पर पुनः जन्म भी न लेना पड़े ? एक कहावत है ।

"पानी से पानी मिले अरु मिले कीच से कीच"

जो जैसा होगा वह वैसे से ही मिलेगा । जब तक हृदय सांसारिक लिप्साओं की कीचड़ में फंसा है तब तक तो वह अपने अनुरूप ही सांसारिक प्रलोभनों के दल-दल की ओर दौड़ेगा । परन्तु जिस समय वासनाओं की धूल छन कर मन ने निर्मल शुद्ध दर्पण स्वरूप प्राप्त कर लिया उस समय उस सच्चिदानन्द परमेश्वर का बिम्बाभास होकर मन ब्रह्म में लीन हो जायगा । श्री कृष्ण में प्रवेश होने के लिए मन को श्रीकृष्ण का मन बनना पड़ेगा । साधारण सांसारिक वासनाओं से लिप्त मन तो श्रीकृष्ण का मन हो नहीं सकता । और मलीन मन कृष्ण में प्रवेश पा नहीं सकता ।

मन की मलीनता दूर करने के लिए साधक को यम-नियम का अवलम्बन लेकर निरन्तर तपस्या में लगे रहना होगा । धूलि का एक भी आवरण रहने तक मन को कठोर यम-नियम के अंकुश में रखना ही होगा । जिस प्रकार रात्रि और सूर्य दोनों साथ-साथ नहीं रह सकते उसी प्रकार संसार में उलझा हुआ मन श्रीकृष्ण के मन में लीन हो नहीं सकता ।

अनेक जन्मों के पुण्य से संचित यदि भगवद् कृपा से किसी को पूर्ण सद्गुरु की प्राप्ति हो गई तो भी शेष मलीनता को दूर करने के लिए गुरुदेव तपस्या की अग्नि से शिष्य के मन को शुद्ध करेंगे ही । योग के आठों अंगों (यम,नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि) में इसी से यम-नियम को प्रथम स्थान दिया है ।

यम पांच है । अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, और अपरिग्रह । इसी प्रकार नियम भी पांच हैं । शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान । अहिंसा में प्रतिष्ठा प्राप्त

करने से सब जीवों में अवैर भाव होता है। सब आत्मवत् हो जाने से कोई वैरी नहीं रहता सभी में "मैं हूँ" इस प्रकार का भाव रहने से द्वैत समाप्त होते ही मन निर्द्वन्द्व हो जाता है। फिर तो "आत्मवत् सर्व भूतेषु समालोष्ठा-मकाञ्चने" की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। द्वन्दों के समाप्त होते ही चित्त-शुद्धि के प्रकाश में बुद्धि स्थिर हो जाती है। भावों और विचारों की तरंगे समाप्त हो जाती हैं। संकल्प-विकल्प की क्रिया लुप्त होने लगती है। और इस तरंगहीन स्थिति को ही चित्त का लीन होना कहते हैं। चित्त आत्मतत्व के प्रकाश में डूबता जाता है। वृत्ति लुप्त हो चुकती है। यही मन का शुद्ध होना है। फिर तो चित्त की कोई उपयोगिता रह भी नहीं जाती। कारण, एक परमात्मतत्व को प्रतिबिम्बित करने के अतिरिक्त चित्त का और कोई स्वरूप ही शेष नहीं रह जाता। केवल अहिंसा में ही पूर्ण प्रतिष्ठा हो जाने से अन्य चारों यमों का अनुष्ठान भी स्वयमेव हो जाता है। सभी यमों का पूर्ण संयम कर लेने से चित्त की वाञ्छित स्थिति प्राप्त हो जाती है। तब ब्रह्मलीन चित्त में अन्य चार यम स्वयमेव प्रतिष्ठित हो उठते हैं। जिस प्रकार मलीन वस्त्र को साफ करने के लिए सोडा, साबुन, ब्लीचिंग-पाउडर-नील, टिनोपाल की आवश्यकता पड़ती है उसी प्रकार संसार की वासनाओं की धूलि से सने मन को यमों के अनुष्ठान से स्वच्छ करने की आवश्यकता होती है। यही चित्त शुद्धि का उपाय है। और जिस प्रकार से सफेद स्वच्छ वस्त्र को पुनः मलीन न होने के लिए धूलि कणों से बचाना पड़ता है उसी प्रकार शुद्ध चित्त को रज तम के कणों से सावधानी पूर्वक बचाने के लिए नियमों का विचार रखना पड़ता है। शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान ये पांच नियम हैं जो हृदय की स्वच्छता को कायम रखने के लिए हैं। शौच दो प्रकार का है आन्तरिक और बाह्य। दोनों ही आवश्यक हैं। नेति-धौति आदि षड्कर्म बाह्य शौच में आते हैं जबकि यमों का पालन अभ्यान्तरिक शुद्धि के लिए है। भीतरी शुद्धि से सत्त्वशुद्धि, मन में प्रसन्नता, चित्त की एकाग्रता, इन्द्रियों पर जय और आत्म-दर्शन की योग्यता आ जाती है।

जितनी अधिक शुद्धि होती जायगी उतनी ही अधिक आत्म-दर्शन की योग्यता प्राप्त होती जायगी। शौच की पूर्णता कैवल्यलाभ है। जब तक कैवल्य पद प्राप्त नहीं हो जाता तब तक शौच की आवश्यकता बनी रहती है। अत्यन्त सूक्ष्मता से हृदय के मल का एक-एक कण निकाल फेंकना होगा। चित्त-शुद्धि की पराकाष्ठा कैवल्य स्थिति में है। सन्तोष से अनन्त सुख लाभ होता है और तप से शरीर और इन्द्रियों की सिद्धि प्राप्त होती है। जब चित्त की अशुद्धि का नाश हो जाता है तब योगी स्वस्थ, स्वच्छ और हल्का हो

जाता है। इन्द्रिय अपने स्थूल विषयों तक सीमित न रहकर सूक्ष्म तन्मात्राओं के साक्षात्कार की योग्यता प्राप्त कर लेती हैं। दूर-श्रवण, दूर दर्शन आदि की योग्यता उत्पन्न हो जाती है। सभी इन्द्रियाँ अपने-अपने सूक्ष्म तत्व पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लेती हैं।

स्वाध्याय से इष्ट देवता का दर्शन होता है। स्वाध्याय कहते हैं शास्त्राभ्यास और नाम-जप को। ईश्वर के नाम का जप चिन्तन, मनन, स्मरण, कीर्तन, तत्सम्बन्धी ग्रन्थों का पठन, मन्त्र–जप, सब स्वाध्याय के अन्तर्गत आते हैं। जो ईश्वर कर्म, क्लेश, विपाक और आशय से अछूता है। जिस ईश्वर में कर्म की उत्पत्ति स्थित, तद्जन्य क्लेश, और उसके परिणाम स्वरूप प्राप्त हुए फल और फलों के भोगने से बने संस्कारों का नाम-निशान तक नहीं है उसी ईश्वर के नाम का जप और अस्तित्व का स्मरण बने रहना स्वाध्याय है।

स्वाध्याय हृदय की अनुभूति और मस्तिष्क के विचारों के सन्तुलित समन्वय से प्रादुर्भूत इष्ट-देवता के अस्तित्व का अटूट क्रम है जो साधक को इष्ट से सम्बद्ध रखता है। इस निरन्तर अनुभूति के अटूट क्रम में साधक अपनापन भूल जाता है। "मैं मैं" के स्थान पर "तू ही तू" अनुभूत होने लगता है। तब सम्पूर्ण समर्पण एवं समग्र आत्म-निवेदन के लिए चित्त कछुए की भाँति सब वासनाओं रूपी अंगों को समेट कर प्रभु चरणों में समर्पित हो उठता है। इसी सम्पूर्ण समर्पण की स्थित को, आत्मनिवेदन की की पराकाष्ठा को, इष्ट की शरणागति को ईश्वर-प्रणिधान कहते हैं। और तब उस परमपिता, दयासागर अनन्त करुणानिधि के चरणों की शरण लेने पर फिर साधक को कुछ करना नहीं रह जाता। फिर तो सारी की सारी जिम्मेदारी उसी सर्व शक्तिमान परमात्मा की है जिसके चरणों में अपने को सौंप दिया है। और उस शरणागत को प्रभु कभी डूबने नहीं देंगे। उसे करुणार्णव दौड़ के उसी प्रकार उठा लेंगे जैसे माँ अपने असमर्थ परन्तु चरणों में आते हुए बच्चे को दौड़कर उठा लेती है। और इसी स्थिति की पुष्टि के लिए जगदात्मा की वाणी गुंजार रही है।

मय्येव मन आधत्स्व, मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मयि एव अत ऊर्ध्वं न संशयः॥

यही तो उस दया सागर का स्वभाव है।

"अगत मजूरी देत है क्यूं राखे भगवान ?"

ऐसा हो नहीं सकता कि साधक ईश्वर में अपने को समर्पित कर दे और प्रभु सुधि न लें। माँ तो अपने मैले बच्चे को भी उठा लेती है फिर साफ-सुथरे की तो बात क्या है? और प्रभु कहाँ कहते हैं कि तू साफ-सुथरा होकर मेरे पास आ। उन्हें तो केवल निष्कपट, निश्छल, व्याकुल पुकार पर दौड़ना पड़ता है। द्रौपदी, गज, प्रह्लाद, अजामिल जिसने जब जैसे पुकारा वे आये। उन्होंने कब

कहा "अजामिल तू मेरा बड़ा गन्दा बच्चा है मैं तुझे नहीं उठाउँगा ।" ना ना, वे तो सब बच्चों को उठाते हैं। पतित, पापी, चाण्डाल, गणिका, शूद्र कोई भी तो वहाँ से निराश नहीं आया । उस दया-सागर का स्वभाव ही ऐसा है :—

"सन्मुख होहि जीव मोहि जबहीं,
जनम कोटि अघ नाशऊँ तबहीं ।"

बस केवल सन्मुख होने की देर है, पाप का मैल वासनाओं की धूलि और कुवृत्तियों की गन्दगी एकदम समाप्त । तभी तो गोस्वामी तुलसीदास जी निर्देश कर गये हैं कि संसार में रहो तो पर ऐसे कि :—

जग से रहो छत्तीस ह्वं,
राम—चरण छः तीन ।"

बस उस विश्वात्मा के अनन्त प्रकाश की ओर उन्मुख भर हो जाइये–बाकी सब काम उसका ।

चाहे आर्त बनकर, चाहे जिज्ञासु होकर, चाहे भक्त होकर और चाहे युक्त होकर किसी भी प्रकार से हों, प्रभु के चरणों का सहारा लीजिये ।

परन्तु योग सूत्र बतलाता है कि मलीन चित्त सम्पूर्ण आत्म-निवेदन कर ही नहीं सकता । ईश्वरोन्मुख होने के लिए ही आत्म-शुद्धि की आवश्यकता है । प्रभु शरणागति के लिए व्याकुल केवल शुद्धचित्त ही हो सकता है । प्रभु के मिलन के लिए तड़फड़ाता हुआ हृदय, उसी पर—केवल एक उसी पर—सम्पूर्ण रूप से निर्भर, उसी के भरोसे उसी के ऊपर अवलम्बित, संसार से निर्मम, निराश्रित, निस्पृह और विरक्त चित्त ही परमेश्वर की शरण प्राप्त कर सकता है । माँ को सच्ची भूख से व्याकुल बच्चे की पहचान भी तो होती है । मक्कारी करने वाले बच्चे को तो तंग आकर वह गोद से उतार देती है । पर माँ के लिए व्याकुल हो कर दौड़ते जाते हुए बच्चे को कोई बीच में उठा ले तो वह चिढ़ जायगा, मचल जायगा। उस समय बच्चा सारे संसार से विरक्त, सब खेल खिलौनों को छोड़ कर संगी-साथियों को भूल कर माँके पास दौड़ता हुआ जा रहा है । अब आप उसे छेड़ेंगे तो वह खीजेगा नहीं क्या ? ठीक इसी प्रकार संसार से विरत, तृप्त, विमुख, निराश्रित, निर्मम चित्त जब भगवान की शरण के लिए व्याकुल होकर उसी की ओर दौड़ेगा, संसार का बिल्कुल भूल कर–तो प्रभु उसे उठाये बगैर नहीं रहेंगे । यही संसार से भूला हुआ चित्त ही तो परम पवित्र, अत्यन्त निर्मल चित्त है । और चित्त के इसी शुद्ध स्वरूप को प्राप्त करने के लिए

"तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रिया योगः

"की सारी व्यवस्था है । परन्तु यदि कहीं मैल का एक भी कण रह गया तो फिर स्वरूप स्थिति से दूर ही रहना पड़ेगा ।

जिन खोजा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ ।
मैं बौरी डूबन डरी रही किनारे बैठ ॥

भगवान की करुणा का अन्त नहीं है। जीव के लिए अनेक रास्ते वे बता रहे हैं :—

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोसि मयि स्थिरं।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय॥

यदि तू अपने चित्त को मुझ में स्थिर न कर सके तो हे अर्जुन अभ्यास करके हो मुझे पाने की इच्छा कर। इस "अभ्यास" एक शब्द में यम-नियम सब साधन आ गये हैं।

अभ्यासे ऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि॥

और यदि तुझसे अभ्यास भी नहीं होता तो मेरे लिए कर्म करने वाला होजा। मेरे लिए कर्म करता हुआ तू लक्ष्य को पा जायगा।

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः
सर्व कर्मफल त्यागं ततकुरु यतात्मवान्॥

और यदि तुझसे इतना भी नहीं होता (अर्थात् कर्म करते समय प्रत्येक कर्म को भगवान् का मान कर उसकी साक्षी में उसे ही समर्पित कर सके इस प्रकार कर्म न करके जीव में कर्तापन कर अभिमान बना रहता है) तो तू सब कर्मों के फलो का त्याग कर दे। अपने चित्त को कर्म के फल की आशा के साथ सम्बद्ध मत कर।

उस दयासागर की दयाका कोई ठिकाना है जो पग-पग पर सब चराचर प्राणियों को संभाले हुए है। जिसमें सब पिरोया है जो सब का आधार है जो सब में है और जिसमें सब है। उस परमात्मा की शरण में जाने के लिए योगदर्शन हमें एक लड़खड़ाता बच्चा नहीं देखना चाहता जो बड़ा होने पर भी असमर्थ अवलम्बित और अपनी शक्तियों से अनवगत रहता है। द्वैत भाव के रहने तक योग दर्शन हमें योग के आठों अंगो के रूप में ऐसे आठ शस्त्र देता है, जिनके संचालन से हम अविद्या के दुर्दम योधाओं को पराजित करके सर्व शक्तिमान के चरणों में अपने को डालने तक की सामर्थ्य प्राप्त कर सकते हैं। और उसके चरणों में पहुँचे नहीं कि हमें पता लगा कि हम तो स्वयं सर्व शक्तिमान हैं केवल इसलिए कि हम उससे भिन्न नहीं हैं। अब तक अपने को केवल भिन्न माने हुए थे, आनन्दस्वरूप होते हुए भी अपने को दुखी समझे थे शक्ति का अमोघ स्रोत होते हुए अपने को दुर्बल अनुभव करते थे और प्रकाश स्वरूप होते हुए भी अंधेरे में टटोल रहे थे। लक्ष्य को प्राप्त परमात्मतत्व में विचरण करते हुए युक्त पुरुष अपने शरीर को इसी लिए रखते हैं कि उससे लोक कल्याण हो। ये लोग परमात्मतत्व से प्राप्त प्रकाश को माया से ग्रसित प्राणिओं में बिखेरते रहते हैं। इनकी अहैतुकी कृपा को समझने की सामार्थ्य साधारण प्राणियों में नहीं हुआ करती। न इनकी लीला को ही वे जान पाते हैं। संसार की कसौटी-पर दिव्य विभूतिओं को परखने की चेष्टा निरी मूर्खता नहीं तो और क्या है?

अनन्त श्री योगिराज चन्द्रमोहनजी महाराज

अपनी अनेक लक्षित और अलक्षित क्रियाओं से लोक कल्याण के काम में लगे न जाने कितने असंख्य लोगों को मार्ग दर्शन देकर गगन भेदी शब्दों में परमात्मा की वाणी का बार-बार स्मरण दिला रहे है —

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशय ॥

उठो साधको —और श्री सद्गुरु देव की वाणी से अपना उद्धार करने के लिए इस स्वर्ण अवसर को हाथ से न जाने दो ।

मानस-ज्ञान

[श्री गौरीशङ्कर द्विवेदी 'शङ्कर' गणेश मढ़िया, झाँसी]

अज्ञानों से हो गए, लुप्त विविध सद्ग्रंथ;
लुब्ध, लालची लोभ-वश, भ्रम-भ्रम भूलें पंथ ।
अतः अधिक अज्ञान-वश, अतिशय अबुध असंत;
नष्ट करें परलोक निज पाएँ अपयश अंत ।
आत्म-शुद्धि के लिए हों, सात्विक, शुद्ध विचार;
आगम-निगम-पुराण प्रिय, यही ज्ञान का सार ।
आत्म शुद्धि साधक करें, बढ़ा-बढ़ा कर ज्ञान;
सांसारिक-गुण-दोष पर, देते कभी न ध्यान ।
आत्म शुद्धि से हृदय में, आता विशद विवेक;
धोखा दे सकता न तब, माया-कृत-अविवेक ।
इन्द्रिय निज वश में करें, दे विषयों को त्याग;
प्रभु-पद पद्मों में तभी, सम्भव है अनुराग ।

मेरी पर्वतीय यात्रा और योगानुसन्धान

[ब्रह्मचारी श्री हरिभक्त, चैतन्य मैनेजिंग ट्रस्टी आत्म-धाम]

प्रयागराज में

अध्ययन कार्यक्रम समाप्त होने पर तीर्थ-राज प्रयाग के महाकुम्भ पर्व-मेले पर पहुँचने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। लाखों की संख्या में पर्वतकन्दराओं से नीचे उतर कर साधु-सन्त, महात्मा, सिद्ध, योगी जन महापुरुष प्रयाग स्नान पर पहुँचे हुए थे। इन महात्माओं

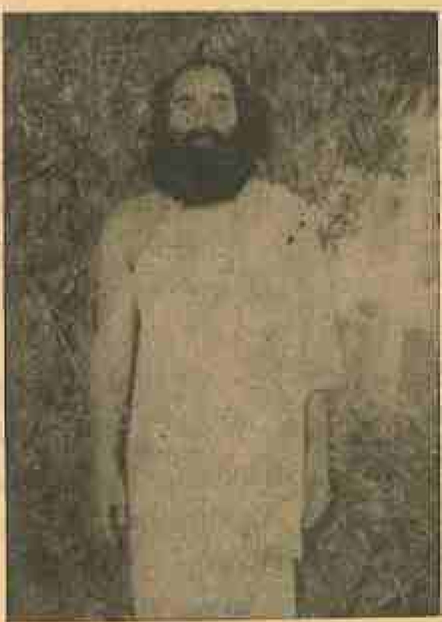

[श्री हरिभक्त, चैतन्य]

के दर्शन से बहुत आनन्दोद्रेक का अनुभव होने लगा। एक महात्मा एक छोलदारी में बैठ गये। तीन दिन के बाद समाधि से उठे। चेहरे पर बड़ी प्रसन्नता और ओज था। कुछ कहता थी। मेरे चित्त में भी भावना हुई कि आत्म-दर्शन का आनन्द ही मानव-जीवन का चर्म लक्ष्य है; और संसार के कार्य तो बन्धन ही हैं। जिस दिन कुम्भ-स्नान का पर्व था। विचार आया कि आज अवश्य ही विशेष रूप में किसी के दर्शन होंगे।

गङ्गा देवी का दिव्य दर्शन !

मध्यान्ह के पूर्व ही रेलवे पुल पर चढ़कर त्रिवेणी संगम की ओर दस लाख आदमियों के समूह पर मैंने दृष्टिपात किया कि सहसा त्रिवेणी संगम से एक देवी निकली और ऊपर की ओर गङ्गा किनारे-किनारे चली आ रही है। दस लाख मनुष्यों के सिर ही सिर नजर आते थे। परन्तु इस देवी का सिर सब से ऊँचा, खुले हुए सुनहरी केश, विलक्षण ओज-स्वी गौरवर्ण चेहरा, भगवे रङ्ग की रेशमी शाती लगाए हुए थी। चन्द्रमा सदृश शीतल तेजः किरणें देवी के चारों ओर दिखाई दे रही थीं। मन में विचारा कि यह कहीं मेरी दृष्टि से ओझल न हो जाय। मैं इसके दर्शन व भाषण का लाभ उठाऊँगा। जब रेलवे पुल के पास वह देवी पहुँची तो मैं पुल के नीचे की ओर देखता रहा। जब पुल के नीचे एक ओर से दीखना असम्भव हो गया तब पुल की दूसरी ओर से नीचे देखता हूं तो कुछ दिखाई न

दिया। पुल के नीचे न कोई तम्बू था न झोंपड़ी।

ध्यान में बैठने पर ज्ञात हुआ कि यह देवी गङ्गा भगवती ही थी। जिस स्थान से गङ्गा इस भूमण्डल पर प्रकट हुई, वहाँ तक मैं यात्रा करूँगा। महा-स्नान समाप्त होने पर प्रयागराज से हरिद्वार की अर्धकुम्भी के सम्मेलन को देखने की भावना से हरिद्वार पहुंचा। यहाँ पर भी अद्भुत सन्त-समागम हुआ। श्री गङ्गा जी की परम पावन ब्रह्मद्रव लहरों में तैरने का अनोखा आनन्दानुभव होता था। ब्रह्मचारी वैरागी, उदासी, दस नाम संन्यासी सन्तों के उपदेश कथा-प्रसंग सुनने से दिव्यानन्द की अनुभूति होती थी। सप्तसरोवर की झाड़ियों में आसन लगा लिया। रात्रि की चांदनी में गङ्गा जल-लहरियों की मधुर ध्वनि से चित्त तत्काल समाहित हो जाता। और चारों ओर इष्टदेव के दर्शन होते। घास की झोंपड़ी से रात्रि के एक बजे निकल कर गङ्गा तट की ओर चला। प्राण की ऊर्ध्व गति हो रही थी दृष्टि पृथ्वी की ओर थी। नीचे हाथी की सूंड दिखाई दी। जब ऊपर देखा तो मेरे पास ही चार फुट की दूरी पर ही जंगली हाथी मस्ताया हुआ खड़ा है। दोनों कपोलों से मद बह रहा है। मेरे चित्त में भावना हुई कि यह तो गणेशजी हैं। मुझे कुछ नहीं कहेंगे। फिर मैंने अपना रुख बदला। और दूसरी ओर गङ्गा तट पर जाकर ध्यान में बैठा गया।

सिंह के रूप में सिद्ध-दर्शन !

एक दिन किसी सन्त को एक सिंह ने पैर से पकड़ लिया क्योंकि वह सोया हुआ था। मेरी झोंपड़ी के पास भी सिंह आता। परन्तु मैं रातभर ध्यान में रहता था। मुझे यह विचार आया कि उस महात्मा को जिस सिंह ने पकड़ा वह सिंह के रूप में कोई सिद्ध था। उसने इसलिए पकड़ा कि सोने के लिये तो और बहुत आबादी वाले स्थान थे, इस एकान्त, नीरव परम शान्त सम्भ्रान्त नितान्त-ध्यानोन्मुखी स्थान पर आकर भी सोना ही है तो घर में जाकर सोजाओ। दूसरे दिन वह महात्मा वहाँ से चले गये।

एक दिन दोपहर के समय दूर जंगल में मैं चला गया कि कोई सिद्ध मिलें। आगे क्या देखता हूँ कि एक सिंह लम्बा पड़ा हुआ है। मेरी दृष्टि जब पड़ी तब मैंने अपनी चाल का रुख दूसरी ओर बदला तब उस सिंह ने भी सिर उठाकर मेरी ओर देखा। फिर वैसे ही पड़ा रहा। मैंने समझा कि यह भी कोई सिद्ध ही था। इसने मुझे संकेत किया कि ऐसे घूमने से सिद्ध नहीं मिलेंगे। साधना करने पर मार्ग-दर्शन के लिये स्वयं ही सिद्ध मिल जायेंगे।

अमर अश्वत्थामा ?

एक दिन अपनी झोंपड़ी पर ही सन्तों का भोजन कराने के लिए भण्डारा किया। हजारों सन्तमहात्मा भोजन करने के लिये आने लगे। मैं देखता रहा कि कोई विशिष्ट महा पुरुष आवेंगे तो उनको मैं अपने हाथों

भोजन कराऊँगा। कुछ देर बाद सभी महात्माओं में ऊँचे कद के, एक आदमी जितनी मोटी उनकी जंघाएँ, भुजा जितनी मोटी अंगुलियां, भगवे रंग का लम्बा चोला पहने हुए, मस्तक पर झुरियां जैसी और एक जख्म जैसा सूखा हुआ चिन्ह था। उनको मैंने नमस्कार किया और हाथ-पैर धुलाये। एक आसन पर बैठाया। तीन पत्तलें आगे मिलाकर बिछा दीं। खीर के लिये चार-पाँच किलो की एक बाल्टी आगे रख दी, और पाँच किलो के लगभग मालपूये इतनी ही खीर तथा सब्जी परोस दी। अब महात्मा जी खाने लगे। दो-दो पूड़ियां सब्जी के साथ एक साथ मुख में डालते थे। एक-दो बार चबाना फिर और उठा लेना। इसी प्रकार पूओं की भी गतिविधि करने लगे। बाल्टी खीर उठा कर पीजाते तब फिर खीर से भर देता। मुझे चित्त में इतनी प्रसन्नता हो रही थी कि वर्णन नहीं कर सकता था।

मैंने विचार किया कि आज भण्डारा तो सफल हो ही गया परन्तु इनसे इनका परिचय भी तो लेलूं। मैंने पूछा कि महात्मा जी आप क्या अश्वत्थामा हैं?

महात्मा जी कहने लगे—अरे क्या बातें करते हो। मैं तो एक साधारण व्यक्ति हूं। मैंने कहा आपके मस्तक में जख्म कैसा है?

उन्होंने कहा—कुछ नहीं ऐसे ही चोट लग गई है। फिर मैंने कहा अच्छा मैं खीर लाता हूँ। महात्मा जी कहने लगे नहीं और नहीं लाना। मैंने कहा क्यों? उन्होंने कहा—आज-कल मैंने भोजन कम कर दिया है। मैंने कहा कम क्यों कर दिया। महात्मा जी ने कहा आज-कल महंगाई बहुत हो गई है। मैंने कहा हमारे यहां तो कमी नहीं है, जितना चाहें लें। कहने लगे कि अब इतना ही अभ्यास रखा है भोजन का, ज्यादा करना ठीक नहीं होता। मैंने कहा अच्छा आप अभी जाना नहीं। मैं दक्षिणा ले आता हूं। पास झोंपड़ी में दक्षिणा की थैली रखी थी। मैं उनकी ओर देखता रहा और आगे चलाता रहा। जब झोंपड़ी के अन्दर से थैली उठाने को बाहिर से ही हाथ डाल कर एक बार ही अन्दर देखा। थैली लेकर पीछे देखता हूँ तो महात्मा जी का कोई पता नहीं चला।

सूर्यकान्तमणि

हरिद्वार से यमुनोत्तरी की यात्रा के लिए प्रस्थान किया। अति रमणीक वन-उपवन तथा पर्वत-कन्दरायें, पर्वत-शिखर तथा साधु सन्तों के दर्शन करता हुआ यमुनोत्तरी पहुँचा। बहुत बर्फ पड़ी हुई थी। श्वेत पर्वत श्रेणियों की आभा से चित्त स्फूर्ति सात्विक निर्मल हल्का और शान्त हो रहा था। ठण्ड अधिक थी। एक कुटिया के अन्दर गर्म जल का कुण्ड था। उस कुण्ड के ऊपर दो लम्बे तख्ते लगा कर मैं बैठ गया। इतनी गर्मी लगी कि वस्त्र भी उतारने पड़े। बिना वस्त्र के ही पसीना चलता था। रात्रि को विश्राम किया। प्रातः गर्म जलकुण्डों में क्रमशः स्नान किया। तीन

कुण्ड थे । एक कुण्ड में पानी उबल रहा था । आटे में नमक मिर्च मसाला डाल कर पुड़ियां बनाई । उनके ऊपर नम्बर लगा कर जल में डालते गये । क्रमशः पहली डाली हुई पुड़ियां पक कर फूल कर नम्बर वार पानी के ऊपर आने लगीं । एक बोरी में आलू भर कर डाले तो २५ मिनट में आलू गल गये । एक वस्त्र में उड़द की दाल और चावल मिलाकर बान्धे,कुण्ड में डाल दिये । डेढ़ घण्टे में खिचड़ी बन गई । अब अन्त करण में विचार आने लगेकि इसका क्या कारण है ? उत्तर मिला कि इस पर्वत में सूर्यकान्त मणि है । वह मणि सूर्य की उष्णता को आकर्षित करती है । इसीलिये श्री यमुना जी को सूर्य पुत्री कहा है ।

गन्धमादन पर्वत और गंगोत्री

गंगोत्री की यात्रा में पहले से भी अधिक रमणीय दृश्य देखे । गंगोत्री मन्दिर से बीस मील आगे गन्धमादन पर्वत की यात्रा करने की भावना हुई । प्रातः चलकर सायं गोमुख पर पहुँचा । मार्ग में जंगली भेड़ बकरे कस्तूरे देखे । पचास-पचास के झुण्ड इकट्ठे घास चर रहे थे । मेरे पास आने पर भी वह डरते नहीं थे । गन्धमादन पर्वत नीली बर्फ से ढका हुआ था । दस फुट की ऊँचाई से तीन इञ्च की मोटाई में ब्रह्मद्रवात्मक श्वेत और मीठे गंगा जल की शुद्ध निर्झरी गिर रही थी । नीचे भी बर्फ ही थी । गंगा जल की धारा गिरने से नीचे बर्फ का तीन फुट गहरा कुण्ड बना हुआ था । रात्रि को बड़ी ठण्डी वायु चलने लगी । जो जल इधर-उधर बह रहे थे रात्रि को सभी जमगये । केवल गंगा-जल की धारा बहती रही । वस्त्र भी वायु लगने से गत्ते के समान अकड़ जाते थे । यहां वृक्ष लकड़ी आदि नहीं थे । एक शिला के किनारे रेत में गहरा गढ्ढा खोद कर उसमें कूर्मासन लगाकर रात्रि व्यतीत की । ठण्ड नहीं लगी पसीना आगया । दूसरे दिन प्रातः स्नानादि करके भजन ध्यान से निवृत्त हो कर दोपहर के समय आकाश निर्मल था धूप अच्छी थी, विचार हुआ कि गन्धमादन पर्वत के शिखरों पर आकाश से मिली धूम्र ज्योति वाष्प सदृश दिखाई देती है । यह क्या है ? ऊपर जाकर देखा प्रतीत होता था कि यही असली गंगाजल है । चन्द्र-मण्डल से वाष्प रूप में गंगाजल आकर पृथ्वी के अन्दर से जल रूप होकर निकल रहा है । इस पर्वत के अन्दर चन्द्रकान्त-मणि है । वह मणि ही चन्द्र मण्डल से अमृत कणों को आकर्षित कर गंगा जल के रूप में परिणत कर रही है । जब ऊपर वाले शिखर की ओर चला तो दो फर्लांग के लग-भग सारा पहाड़ ही नीचे की ओर खिसकने लगा, मिट्टी पत्थर घूमने लगे । मैंने विचार किया कि अब तो ऊपर की ओर ही दौड़ना चाहिये नहीं तो घूमते हुए पत्थरों के नीचे ही दब जाऊंगा । ऊपर की ओर दौड़ता रहा, पत्थर भी नीचे खिसकते हुए घूम रहे थे, मैं भी घूमते पत्थरों पर पैर रखते-रखते शिखर की ओर

बढ़ रहा था। जब किनारे पर पहुंचा तो देखा कि जमीन के अन्दर बर्फ ही बर्फ थी। ऊपर ही पत्थर और मिट्टी थी। धूप की गर्मी लगने से पर्वत का उतना भाग नीचे खिसक रहा था। स्थिर स्थान पर पहुंचने पर कारण समझ में आया।

एक वृद्ध सिद्ध महात्मा

तीन बजे के समय एक वृद्ध सिद्ध महात्मा के दर्शन हुए। उत्तर की ओर से एक तेज-धार वाली नदी आ रही थी, उसके पार महात्मा खड़े थे। श्वेत दाढ़ी, जटाएँ और लम्बा चोला पहने हुए थे। मैंने ऊँचे स्वर से नमस्कार किया और विनय प्रार्थना की कि मुझे भी अपने साथ ले चलो। उन्होंने दोनों हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया। मौन थे, बड़ी प्रसन्नमुद्रा में थे। पानी की धारा तेज थी। मैं उसे पार नहीं कर सकता था। महात्मा उसी नदी के किनारे उत्तर की ओर चले गये। मेरे चित्त में उत्कट लालसा थी कि किसी सिद्ध के दर्शन हों, सो दर्शन तो हो गये। मैंने उनका बहुत अनुग्रह समझा। रात्रि को फिर भगीरथ शिला के किनारे बैठकर प्रभु चिन्तन करता रहा। श्रीकृष्ण जी की झाँकियाँ दिखाई देती थीं। तीसरे दिन भी वैसे ही स्नान सन्ध्यावन्दन भजन किया। उस गङ्गा-जल का आस्वाद मीठा, रङ्ग श्वेत और कुछ मटमैला वाला था। और बड़े-बड़े पानी वाले नाले उसमें मिलते थे। परन्तु गङ्गा जल के रङ्ग में रँग जाते थे।

गङ्गाजी की उत्पत्ति

"सत्संगति कथय किन्न करोति पुंसाम्"

इस लोकोत्तरोक्ति को वह ब्रह्मद्रवात्मक गङ्गाजल चरितार्थ कर रहा था। गङ्गाजल की उत्पत्ति गोलोक में हुई। गोलोक में श्री राधाकृष्ण जी की प्रसन्नता के लिये संगीत सभा हो रही थी। श्रीसरस्वती जी ने श्री राधाकृष्ण को परमपुनीत प्रेम भरा एक शास्त्रीय गायन सुनाया तो श्री राधाकृष्ण जी ने अपने गले के अमूल्य रत्नों के दिव्य हार श्रीसरस्वती जी को अर्पित किये। फिर श्री शिवशङ्कर जी ने नृत्य करते हुए अतीव भावावेश में संगीत सुनाया तो श्रीराधाकृष्ण जी उस संगीत के आनन्दमय रस में विभोर हो-कर पिघल गये। वही ब्रह्मद्रव गङ्गाजल बना है, जिसे सदियों तक शीशी में रखें बिगड़ता नहीं। सारे सभासद व्याकुल हो गये कि श्री राधाकृष्ण कहाँ चले गये। पुकारने लगे। तब आकाश वाणी हुई कि श्री शिवशङ्कर इसी गङ्गाजल को हाथ में लेकर प्रतिज्ञा करें कि "मैं योगवेदान्तादि तथा तन्त्रमन्त्रदि-विद्या का प्रचार करूँगा" तब हम अपना स्वरूप प्रत्यक्ष दिखायेंगे। श्री शिव-शङ्कर जी ने वही ब्रह्मद्रव हाथ में लेकर प्रतिज्ञा की। तत्काल श्री राधाकृष्ण जी प्रकट हो गये। उस जल की अधिष्ठात्री देवी ही गङ्गा भगवती है।

गङ्गाजल की महिमा और गोमुख

गङ्गाजल से स्नान करने से और गङ्गा-जल का पान करने से अनोखी सात्विकता, पवित्रता तथा सूक्ष्मता का अनुभव होने लगा। प्रतीत होता था कि नव जीवन मिला है। मानव जीवन सफल हो गया है। तीन रात्रि निवास करने के बाद गोमुख से वापिस आया। गोमुख नाम पड़ने का कारण भी देखा। जिस स्थान से असली गङ्गाजल गिरता था, उस स्थान पर नीली बर्फ जमी हुई थी। गङ्गा-जल के जमीन से आने के कारण बर्फ पिघल कर गौके गले के ऊपर वाले सारे भाग जैसा आकार वाली था। उसके अन्दर अन्धेरा जैसा था। गङ्गाजल के स्नान करने से सारे तीर्थों के जल स्नान का माहात्म्य मिलता है। यह जल नहीं किन्तु ब्रह्मतत्व का स्पर्श किया हुआ अमृत ही कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी।

केदारनाथ की ओर

गङ्गोत्री से आकार श्रीकेदारनाथ जी की यात्रा की। केदारनाथ में सभी तीर्थों से अधिक ठण्डी थी। बर्फ गिर रही थी। शिला रूप शिव-दर्शन किये। एक सन्त नग्न अव-धूत अवस्था में देखे। उनको पसीना पड़ा हुआ था। दूसरे लोग गर्म वस्त्र पहने हुए ऊपर कम्बल लिए हुए भी अग्नि सेकते थे। मत्स्य पुराण में लेख है कि केदारनाथ के आगे छः मील पर एक गुफा है उस गुफा में छः दिन तक अन्न-जल का त्यागकर ध्यानस्थ रहने से सातवें दिन देवलोक के द्वारपाल आकर, उस व्यक्ति को सदा के लिए देवलोक के दिव्य-स्थान पर ले जाते हैं। वहाँ से मनुष्य-लोक में आने की आवश्यकता नहीं रही। उस गुफा का पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि वहां पर एक सन्त दो रोज से इसी प्रयोग में बैठे हुए हैं। अतः वहां जाने का प्रोग्राम नहीं बना। वापसी पर जंगल में सांप देखे। बड़े भयंकर सर्प दौड़ते हुए आते और दाहिनी ओर ऊंची जगह से कूदकर चलते हुए मेरे आगे से पेट का स्पर्श करते हुए बड़ी तेजी से बाईं ओर हवा में दूर तक जाकर पृथ्वी पर गिरते थे। ऐसे कई सर्प देखे। मेरे साथ एक और सन्त थे। वह कहने लगे कि किसी और मार्ग से चलते हैं। इन सर्पों से बड़ा भय लग रहा है। मैंने कहा कि यह हमारी परीक्षा हो रही है कि जीवमात्र में परमात्म भावना बनी है कि नहीं। सदा-शिव ही अपने नागराजों को प्रेरणा कर रहे हैं। डरने का कोई कारण नहीं है।

विलक्षण सिद्ध

एक स्थान पर एक विलक्षण सन्त मिले। एक टूटा हुआ शिवालय था। उसके अन्दर से दिन को बाहर निकले। उनकी जिह्वा बाहर लटक रही थी। दोनों हाथ कांप रहे थे। मैंने उनको देखा तो मुझे प्रतीत हुआ कि यह कोई अच्छे सिद्ध हैं। मेरे साथ एक

महात्मा थे । उनको मैंने पूछा ? यह महात्मा कैसे हैं ? उन्होंने कहा कि यह महात्मा क्या हैं, इनको वायु की बीमारी हो गई है। सकवा हो गया है या अर्धांग होगा ।

मैं रात्रि के एक बजे उठकर उनके पास चला गया तो वह योगासन लगाकर बैठे हुए थे । निश्चल ध्यानावस्था थी । मेरे जाने पर हाथ उठाकर संकेत किया कि इस आसन पर बैठो । बैठने पर उन्होंने दीपक तेज किया और कागज पर लिखने लगे कि जिस महात्मा के साथ आप आते हैं वह कुछ नहीं जानते । शीघ्र ही इनका साथ छोड़ दो । इनके साथ रहने से आपके योग-मार्ग में भारी विघ्न होगा । यह केवल हनुमान जी की उपासना करते हैं लोगों को वश में करके रुपया बटोरने के लिये ही इनका सारा प्रयास है। आपका योग मार्ग सर्वश्रेष्ठ मार्ग है। बड़े-बड़े सिद्ध पुरुष आपको मिलेंगे । योगमार्ग का असली भेद बतला देंगे। आप अपना साधन करते रहें । जीवन सफल होगा ।

विशाल बद्रीनाथ

श्रीबद्रीनाथ जी की यात्रा में भी पर्वत श्रेणियों पर अद्भुत दृश्य अनुभव में आए । बद्रीनाथ यात्रा में अकेला ही मैं एक जंगल में पहुंचा । भूख लगने पर एक कैंथ के वृक्ष पर फलदार बेल चढ़ी हुई देखी । और उसमें पीले-पीले पके हुए फल देखे । मेरे पास एक लोटा था । वह पके हुए फल चुनकर उसी लोटे में रखने लगा । चुनते-चुनते जब मैं वृक्ष के किनारे पहुंचा तो आगे देखता हूं कि ६ फुट की दूरी पर उसी वृक्ष के पके फल रीछ खा रहा है । पिछले दो पैर उसके भूमि पर थे, और अगले दोनों वृक्ष के ऊपर रखे थे । टहनियां निमां-निमां कर मुख से ही फल लेकर निगलता जा रहा था। वह चाहता तो अगले पैर वहां से मेरे तक पहुंचा सकता था । मेरे चित्त में श्रीकृष्ण के ही दृश्य घूम रहे थे । मैंने विचार किया कि बद्रीनाथ में श्रीकृष्ण जी के ही दर्शन हैं । इस रीछ में भी वही हैं । मेरे में वही हैं । मेरे चित्त में कोई हिंसा की भावना नहीं है तो इस रीछ के चित्त में भी हिंसा की भावना नहीं होनी चाहिये । यही निश्चय करके उसी वृक्ष के उत्तर की ओर वृक्ष की तरफ पीठ करके मैं बैठ गया । वृक्ष की दक्षिण की ओर रीछ फल खा रहा था । मैंने श्री बद्रीनाथ जी का ध्यान किया । वह फल भरा लोटा हाथों पर रखकर श्री बद्रीनाथ जी को नैवेद्य लगाया और प्रसाद रूप में खाने लगा । उधर रीछ भी फल खाता-खाता वृक्ष के किनारे पर पहुंचा । सामने मुझे बैठा हुआ देखा । केवल ६ फुट ही मेरे से दूर था । मेरी तरह ही वह भी वापिस चला गया । उसके पैरों की ध्वनि से मैंने समझा कि अब रीछ दूर चला गया है । फल खाने के बाद उसी वृक्ष से फल चुनकर मैंने लोटा भर लिया । श्री बद्रीनाथ-नारायण में पहुंचा । अद्भुत दर्शन हुए ।

ठण्डा जल और गर्म जल कुण्ड दोनों में स्नान किये। स्वप्न में ध्यान में दिव्य दर्शन होने लगे। फिर वहां से आगे नील सरस्वती नदी पार करके वसुधारा के दर्शन किये। विलक्षण ही स्थान था। सौ फुट की ऊंचाई से जल प्रपात हो रहा था। नीचे भी बर्फ जमी हुई थी। इतनी देर में आठ दस आदमी आ गये। उस जल धारा के नीचे स्नान के लिये पहुंचे तो जल गिरना बन्द हो गया बर्फ पर ही वह आदमी लोट-पोट होने लगे। मैंने विचार किया कि यह आदमी अब चले जायेंगे तब मैं जल धारा के नीचे जाऊंगा। बहुत पश्चात्ताप करते हुए सभी आदमी चले गये। मैंने भी वस्त्र उतारे। ज्योंही धारा के नीचे पहुंचा, तब इकट्ठा ही जल गिरने लगा। आंखें खोल कर जल में स्नान करते हुए देखता रहा। अद्‌भुत यन्त्राकार श्रीचक्रादि रंगबिरंगे स्वरूप दीखने लगे। सन्ध्या की। सूर्यनारायण जी को अर्घ्यदान देवतर्पण, ऋषितर्पण, पितृतर्पण तथा मार्जन किया। इतनी देर में कुछ आदमी और आ गये। तत्काल जल गिरना बन्द हो गया। मैंने वस्त्रादि धारण किये और वहां से आगे स्वर्गारोहण की ओर चल पड़ा, जिस स्थान पर पाण्डव बर्फ में गल गये थे। केवल धर्मराज युधिष्ठिर ही सदेह स्वर्गलोक में गये थे। तीन मील आगे जाने पर लाल रंग की बर्फ नजर आने लगी उस बर्फ की ठण्डक से हाथ-पैर और मुख में जलन जैसी प्रतीत होने लगी। मन में विचार हुआ कि अग्नि हो तो हाथ-पैर गर्मा लेने से अच्छा होता। इतनी देर में एक पर्वत घाटी से एक आदमी उतरता हुआ नजर आया। मेरे मार्ग पर ही सामने आ मिला। उसने कहा क्या अग्नि सेकने की इच्छा है? मैंने कहा हां। उसने एक पत्थर श्वेत रंग का हाथ में लिया और एक लोहे की चोट लगाई उससे अग्नि की चिनगारियाँ निकलीं। उन चिनगारियों को एक बूटी के छिलके में लेकर अग्नि चेतन करदी। हाथ पैर गर्मा कर वह आदमी भी उसी घाटी में चला गया और मैंने भी आगे चलना आरम्भ कर दिया। एक मील आगे जाकर देखा कि रीछ से भी बड़े-बड़े जानवर बर्फ पर इधर-उधर दौड़ने लगे। ६ इन्च लम्बे बाल उनके सारे शरीर पर लटक रहे थे। मुझे देखकर वह और आगे की ओर भागने लगे। बहुत दूर आगे जाने पर भी कोई ऐसा स्थान न मिला, जहाँ रात्रि को बर्फ रहित स्थान पर विश्राम करता। अतः वापिस ही आना पड़ा। उस बर्फानी वायु के लगने से ऊपर की चमड़ी गलने लगी। पाण्डवों के शरीर भी उसी बर्फ से गल गये थे। वसुधारा की पर्वत घाटी में विश्राम किया। दिन को वसुधारा की पहाड़ी के ऊपर चढ़ा तो वहाँ अष्ट वसुधारा देखी। आठ स्थानों से आठ धारायें नीचे गिर रही थीं। उनके नीचे पाँच धारायें हो गईं। पर फिर नीचे एक धारा ही बन गई।

नर-नारायण की तपस्यास्थली

वापिस आकर श्री बद्रीनाथ धाम में विश्राम किया इस क्षेत्र में सत युग में श्रीनर-नारायण जी ने ध्यानयोगमय तपश्चर्या की है। इसी कारण से सर्वश्रेष्ठ आध्यात्मिक भावनाओं से परिपूर्ण वातावरण, शान्त दिगन्त निर्वासनात्मक भाव से प्रभावित है। नर-नारायण जी की तपश्चर्या से भयभीत इन्द्र ने वसन्त ऋतुराज अप्सराओं तथा रति-सहित कामदेव को आज्ञा दी कि बद्रीनारायण क्षेत्र में जाकर नर-नारायण की तपश्चर्या में विघ्न डालो और उनके चित्त विमुख कर दो। आज्ञा पाते ही सभी आ गये। वसन्त ऋतु के मद भरे पुष्प खिलने लगे। दिव्य सुगन्ध चारों ओर फैल गई। गन्धर्व अप्सरायें अपने प्रेमी पतियों सहित नृत्य गान करने लगीं। कोयल मयूरादि पक्षीगण मधुर-मधुर बोलियां बोलने लगे। मरते हुए भौंरे पुष्प-पराग लेते और मधुर गुञ्जान करते हुए चित्त को मुग्ध कर रहे थे। दिव्य वस्त्राभूषणों से सुसज्जित अप्सरायें चित्त को हरण करतीं थीं। गहनों की झङ्कार, वीणा, सितार, तबले और विचित्र वाद्य यन्त्रों की अद्भुत, दिव्य, मधुर, मादक ध्वनि चित्त आकर्षित कर रही थी।

इतनी देर में नर नारायण जी ने नेत्र खोल कर देखा कि यहां तो स्वर्ग उतर आया है। नारायण ने अपने छोटे भाई नर को कहा कि हमारी तपस्या को भङ्ग करने के लिये इन्द्र ने ही यह दिव्य लीला रचाई है। इतना कह ही रहे थे कि वह सभी रास मण्डल की अप्सरायें इन दोनों के पास आकर प्रेम भरे हाव भाव दिखाने लगीं। नारायण जी ने अपनी जंघा पर हाथ से ताली बजाई और योगबल से उर्वशी आदि सोलह हजार परम सुन्दरियाँ युवावस्था में मद भरे गाने गाती हुई प्रकट कर दीं। और इन्द्र की भेजी हुई रम्भा मेनकादि सोलह हजार देव सुन्दरियों को कहा कि लो यह उर्वशी आदि सोलह हजार परम सुन्दरियों को साथ लेकर इन्द्र के पास चली जाओ। यह और अधिक शोभा बढ़ायेंगी। इन्द्र सभा की भेजी हुई अप्सराओं ने कहा कि आप जैसे परम तेजस्वी तपस्वियों को छोड़-कर हम तो नहीं जायेंगी। यह आपकी प्रकट की हुई भले ही चली जायें। ऐसे योगियों के दर्शस्पर्श से जीवों का मोक्ष हो जाता है। हम आपकी शरणागत हैं। हमें त्यागना आपका धर्म नहीं है। तब नारायण जी ने कहा कि इस समय हम योगमय तपस्या और धर्म के प्रचार में हैं। जीवों के मोक्ष हेतु कृष्ण-वतार में कार्य करना है। उस समय आप राजाओं के घर कन्या रूप में जन्म ग्रहण करना और मुझे प्राप्त कर लेना यह बात स्वीकार करके वन्दना की और वे सभी अप्सरायें देव लोक को चली गईं। श्रीकृष्णा-वतार के समय वही अप्सरायें राजाओं के यहाँ कन्या रूप में आई और दुष्ट यवन

उनको ले गये। श्रीकृष्ण जी ने ग्वालवालों को घी, दूध, दही, मक्खन खाने की आदत डाली और हृष्ट-पुष्ट बनाया। दुष्ट यवनों पर हमला करके राजाओं की सोलह हजार लड़कियाँ यवनों से छुड़ाकर लाये। जब युवावस्था हुई तो उन्होंने श्रीकृष्ण जी को ही अपना मोक्षदाता पति स्वीकार किया। श्री कृष्ण जी ने ही आज से साढ़े पाँच हजार वर्ष पहिले इसी बद्रीनारायण क्षेत्र में श्री बद्रीनारायण मन्दिर बनवाया और उसमें श्रीबद्रीनारायण चतुर्भुज, नर, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारद, गणेश और शक्ति की स्थापना की जिनका प्रभाव घोर कलयुग के अन्त तक रहेगा। योगध्यान साधना के लिये हरिद्वार से ऊपर ऋषिकेश उत्तरकाशी आदि पर्वतीय प्रदेश बहुत ही उत्तम रहे हैं। परन्तु आज-कल लोग उपद्रवी हो गये हैं इसलिये जहाँ कहीं निश्चिन्त स्थान हो साधना करनी चाहिये। सुयोग्य गुरु की कृपा दृष्टि से ही योग-मार्ग में प्रकाश मिलता है। अन्यथा अन्धेरे में भटकने वाली बात है। गुरु परम्परा ही सफलता देने वाली है अतः अत्युत्तम सद्गुरुदेव की प्राप्ति ही मानव-जीवन की सफलता है। यही मोक्षद्वार है।

सिद्ध गुफा के आधार

[कु० सुधा श्रीवास्तव टूण्डला]

योगेश्वर जटाधारी

मेरे प्रभुजी सिद्ध गुफा के आधार ॥

जिला आगरा ग्राम सवाँई, जाने सब नर-नार।
दीन अधम तारन को प्रभु ने, खोला मुक्ति द्वार ॥

जटा-जूट धारी योगेश्वर भक्तन के रखवार।
ब्रह्मा, विष्णु, पार ना पावें, माया अपरम्पार।

मेरी ओर निहारो प्रभु जी तुम करुणा-आधार।
दीनानाथ दया के सागर दया करो करतार ॥

× × × ×

कर दो देव 'सुधा' से सिञ्चित तुम मेरा संसार।

शिष्यों के हित में--
सद्गुरुदेव की--
दिव्य शक्तियाँ

[श्री आचार्य यशोवर्धन]

सिद्ध पुरुष अपने अनन्य भक्तों और शिष्यों के हित में किस प्रकार अपनी दिव्य शक्तियों का प्राकाट्य करके उनका परित्राण करते हैं नीचे की कुछ घटनायें इसी का संकेत मात्र हैं :—

स्वामी रामदास शिवाजी के समकालीन एक सिद्ध सद्गुरु थे। गुरु अपने शिष्यों को एक समान प्रेम करता है किन्तु उनमें से कोई एक उसे विशेष प्रिय हो सकता है। जैसे मनुष्य अपने सभी अंगों को प्यार करता है किन्तु अंगुलियों की अपेक्षा, उसकी आंखें उसे अधिक प्यारी होती हैं। इसी प्रकार स्वामी रामदास को अपने अनेक शिष्यों में सभी प्रिय थे किन्तु कल्याण सबसे अधिक प्रिय था। दूसरे शिष्य यह नहीं समझ पाते थे कि कल्याण औरों की अपेक्षा गुरु को अधिक प्यारा क्यों है ?

एक बार स्वामी रामदास ने अपने शिष्यों की भक्ति की परीक्षा ली। उन्होंने अपने घुटनों के जोड़ पर एक आम रखकर उस पर चारों ओर से एक सफेद पट्टी लपेट दी जिससे वह एक सूजे हुए फोड़े के समान दीखने लगा। स्वामी रामदास ने सभी शिष्यों को बुलाया और कहा—देखो मेरे घुटने के जोड़ में एक भयंकर दुसाध्य व्रण उठ आया है। यह इतनी पीड़ा दे रहा है कि मेरा जीवन ही समाप्त हुआ सा जान पड़ता है। बचना मुश्किल ही मालूम देता है अलबत्ता एक विशेषज्ञ यह बतला गये हैं कि यदि कोई मुंह से चूसकर इसका मवाद हटा देगा तो निश्चय ही जीवन रक्षा हो सकेगी लेकिन इसके साथ यह भी निश्चय है कि जो इस जहरीले व्रण से मुंह लगायेगा उसकी मृत्यु तत्क्षण हो जायगी। स्वामी रामदास ने सभी शिष्यों की ओर देखा और कहा—अपनी जान के लिए तुम में से किसी की जान मैं क्यों लूं ? अच्छा यही है कि यह विषैला व्रण मेरे ही प्राण ले ले। सभी शिष्य रामदास के इस कथन को सुनकर चुपचाप बैठे रहे किन्तु कल्याण का मन व्यग्र हो उठा वह बीच में से झपटकर उठा और घुटने के व्रण पर जाकर उसने अपना मुंह लगा दिया। कल्याण के आश्चर्य की सीमा न रही जब उसने अनुभव किया कि व्रण के मवाद की जगह वह मीठे अमरस का अनूठा आनन्द ले रहा है। स्वामी रामदास ने उसकी पीठ थप-थपाई

और उसके निष्कट प्रेम व श्रद्धा की सराहना करते हुए दूसरे शिष्यों को यह अनुभव करा दिया कि कल्याण क्यों उनको अधिक प्रिय है।

कल्याण की जैसी असंदिग्ध श्रद्धा अच्युत प्रेम तथा अविभक्त निष्ठा सद्गुरु की कृपा से ही प्राप्त होती है।

(२)

गौसाली शाह के गुरु गंगा नदी के किनारे एक कुटी में रहते थे। उन्होंने अपने इस शिष्य को नदी की बीच धार से एक घड़ा भर पानी पीने के लिए लाने का हुक्म एक दिन दिया। आधी रात का वक्त था और वर्षा के कारण गंगा नदी भरपूर उभार पर थी। गौसाली पहले तो हिचकिचाया किन्तु बाद में साहस बटोर कर तथा गुरु की सर्वज्ञता पर विश्वास करके असम्भव को सम्भव करने के लिए उद्यत हो गया। भयानक और अगाध जल प्रवाह के भीतर वह उतर भी नहीं पाया था कि नदी में उसे आश्चर्य जनक परिवर्तन दिखाई पड़े। उसने देखा भयंकर अगाध बाढ़ वाली नदी केवल एक पतली धारा के रूप में बह रही है। उसका घड़ा नदी के तल को छू जाता था। उसने सोचा यह धार नहीं हो सकती। वह साफ धार की तलाश में दूसरे किनारे तक जा पहुंचा। इसी बीच में उसने अपने गुरु को अपने पास खड़ा पाया। गुरु ने पूछा तुम्हें इतना विलम्ब क्यों हुआ? शिष्य ने कहा मुझे सिवाय इस पतली धार के और कोई धार ही नहीं पा रही है जहां से घड़ा भर सकूं। तब गुरु ने कहा अच्छा इस पतली धार से ही घड़ा हाथों से पानी उलीच-उलीच कर भरलो। शिष्य आदेश के अनुसार घड़ा भरने लगा उसने यह भी देखा कि उसके गुरुदेव भी हाथों से पानी उलीच-उलीच कर घड़ा भरने में उसकी मदद कर रहे हैं। कुछ बहाना बताकर गुरु शिष्य को घड़ा भरकर तुरन्त आने के लिए कहकर चलते बने। शिष्य गौसाली शाह जब कुटी में लौटा तो अपने दूसरे शिष्य साथियों से यह सुनकर उसके आश्चर्य की सीमा न रही कि उसके गुरु उसकी अनुपस्थिति में कुटिया को छोड़कर एक क्षण के लिए भी बाहर नहीं गये। वे लगातार उसके बारे में वहीं बैठे-बैठे शिष्यों से बातें करते रहे थे।

दिव्य शक्ति के प्रयोग का यह प्रकार था। गौसाली शाह के गुरु का जिसके माध्यम से उन्होंने अपने शिष्य के अहंकार को परोक्ष रूप से मिटाकर उसे साधना के पथ में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया। पर सद्गुरु ऐसी दिव्य शक्तियों का प्रयोग तब तक नहीं करते जब तक ऐसा करना आध्यात्मिक कारणों से जरूरी न हो।

(३)

शकुनि के कपट-पूर्ण पासों के खेल में दुर्योधन पाण्डवों का सर्वस्व हरण कर चुका है। धर्मराज युधिष्ठिर पर अधर्म का अंकुश जम कर बैठ गया था वे अपनी पति परायणा

पत्नी द्रौपदी को दांव पर लगाया। उसे भी अपने विरोध पक्ष में हार चुके हैं। नियमानुसार द्रौपदी को खुले सभा भवन में बुलाया गया। उसने कहा मैं मासिक धर्मा होने के कारण सभा-भवन में जाने की स्थिति में नहीं हूं—क्षमा कीजिए मैं आ नहीं सकती। कौरव दूत ने कहा तुम कौन होती हो न जाने वाली। अब तुम पाण्डवों की नहीं कौरवों की सम्पदा हो। क्योंकि युधिष्ठर तुम्हें पाशों के खेल में दांव पर लगाकर हार चुके हैं। द्रौपदी सुनकर अवाक रह गई। सन्देश-वाहक इच्छा न होने पर भी उसे बलपूर्वक सभा-भवन में ले आया।

× × ×

सार्वजनिक खुली असेम्बली में जहां पाण्डव भी अपनी पराजय की वेदना लिए बैठे थे—द्रौपदी को अपमानित किया गया। उतार दो यह सुन्दर राजसी साड़ी। अब तुम दासी हो अतः दासों की पोशाक ही तुम्हें पहननी होगी। द्रौपदी ने अनेक तर्क दिये—अनुनय विनय की किन्तु किसी पर ध्यान नहीं दिया गया। साड़ी उसके शरीर की बलपूर्वक खींची जाने लगी। दुष्ट दुःशासन इस अधम कार्य के लिए आगे आया—नारी की लज्जा निवारण हेतु धारण की साड़ी वह बरबस खींचने लगा—सभी प्रकार के व्यक्ति सभा में थे किन्तु किसी को भी इस अत्याचार का विरोध करने का साहस न हुआ। देवी द्रौपदी असहाय थी उसे इस भीषण संकट में भगवान् कृष्ण का स्मरण आया वह आर्त स्वर में उन्हें पुकारने लगी। उसके हृदय की वेदना ने द्वारिका में बैठे भगवान् कृष्ण के चित्त को प्रभावित किया। योगयोगेश्वर ने अपने को स्मरण करने वाली अबला की सहायता अपनी योग शक्ति द्वारा करने में एक क्षण का विलम्ब नहीं किया। दुःशासन द्रौपदी के शरीर की साड़ी को बलपूर्वक उतार रहा था—भगवान् कृष्ण का योगेश्वर्य उसकी सहायता कर रहा था, दुःशासन के हाथ साड़ी खींचते-खींचते थक गये लेकिन साड़ी का अन्त नहीं आया—वस्त्र की यह अनन्तता योग-योगेश्वर की योग माया के अतिरिक्त और कुछ नहीं थी।

धर्म के रक्षणार्थ और पाण्डवों के हित में भगवान् कृष्ण ने अनेक अवसरों पर अपनी यौगिक शक्तियों का प्रयोग किया। इतना ही नहीं अपने ब्रजवास के दिनों में जब उनकी अनन्य आराधिका गोपियां नृत्य लीला के समय कृष्ण का हाथ पकड़कर नृत्य करने की अलग-अलग इच्छा करती थीं तब योगेश्वर कृष्ण एक के अनेक होकर प्रत्येक गोपी के साथ एक समय में सब की अंगुली पकड़कर नृत्य लीला करते हुए दृष्टिगोचर होते थे। ऐसे ही एक दिन उन्होंने अपने खिरक की सभी गायों को एक ही समय में एक साथ दुहकर माँ यशोदा को आश्चर्य चकित कर दिया था—यह सब उनका यौगिक चमत्कार ही था।

बाल-योगी श्रीचन्द्र
की
चमत्कारिक लीलायें

[श्री विजयसिंह एम० एस० सी०,]

विक्रम सम्वत १५५१ में भाद्रपद शुक्ला नवमी के पवित्र शुभ दिन, श्री गुरु नानक देव जी के घर में उनकी धर्मपत्नी देवी सुलक्षणा ने एक अद्भुत बालक को जन्म दिया। सद्योजात बालक कांतिमय एवं जिसके मस्तक पर जटा, भाल पर त्रिपुण्ड तथा सारे शरीर पर भस्म विभूषित था। ये अलौकिक चिह्न प्रत्यक्ष उस बालक को शंकर अवतार सिद्ध करने वाले थे। इसी दिव्य बालक ने आगे चलकर जगत् में श्रीचन्द्राचार्य के नाम से ख्याति प्राप्त की। १४ वर्ष की ही अवस्था में योग-मार्ग का इस महापुरुषने अनुसरण कर, उदासीन सम्प्रदाय के सुविख्यात महात्मा अविनाशी मुनि से योग-दीक्षा प्राप्त करके अपने को परम ब्रह्म में लीन कर लिया। इसी अवस्था में उन्होंने अपने धार्मिक विचारों का प्रचार जगह-जगह पर करना शुरू कर दिया। इसी प्रचार के अन्तराल में जहां-जहां विशेष जन-समुदाय अधिकारी वर्ग के रूप में मिलता वहां-वहां उनकी अद्भुत योग-शक्ति का परिचय मिलता। उनके जीवन में क्या-क्या अद्भुत आश्चर्यजनक घटनायें घटीं उनका थोड़ा सा संकलन मैं इस छोटे से लेख में सर्वधारण के हितार्थ कर देना चाहता हूं। मेरे विचार में गुरु नानक देव के सुपुत्र महात्मा श्रीचन्द्र एक अवतरणीय महापुरुष थे क्योंकि पूर्व जन्म के वश से जन्मग्रहण करने के बाद बाल्य अवस्था में ही सिद्धि-भाजन बन गये थे।

आचार्य श्रीचन्द्र जी का शरीर लौकिक न होकर दिव्य शरीर था। यही कारण था कि सम्पर्क में आने वाले सभी जन इनकी कृपाओं से लाभ उठाकर अध्यात्म की ओर अग्रसर हो उठते थे। इनकी वाणी सत्य एवं सार गर्भित होती थी। एक समय इस महापुरुष ने महात्मा रामदास जी को एक भविष्य वाणी की कि समय आने पर तुमको एक सुयोग्य सुपात्र यशस्वी क्षत्रिय शिष्य मिलेगा। समयान्तर में क्षत्रपति शिवाजी ने श्री रामदास जी से गुरु-दीक्षा ली। महापुरुषों के वचन कभी असत्य नहीं होते। अनुभवी सन्त कबीरदास जी ने कहा है:—

साधु वचन पलटं नहीं पलट जाय ब्रह्माण्ड ।

जिन दिनों भारत की उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर विधर्मियों का अत्यधिक बोलबाला था। इस महान योगी ने सनातन धर्म का प्रचार यथाविधि कई जगहो में किया । काश्मीर में भ्रमण करते हुये श्रीचन्द्र महाराज जी ने एक अत्यन्त विस्मयकारी घटना घटित करके उन दिनों काश्मी के राजा याकूब के मन्त्री एक मुसलमान विधर्मी को दिखाया जिसके फल स्वरूप उसका हृदय एवं विचार बिल्कुल परिवर्तित हो गये घटना इस प्रकार से थी :—

उस यवन मन्त्री के विशेष जिज्ञासा एवं विनम्रता को देखकर श्रीचन्द्र जी ने योग-शक्ति का दर्शन प्रत्यक्ष उसे करा देने के हेतु धूनी की एक जलती लकड़ी जमीन में वृक्ष लगाने की तरह गाड़ दी एवं अपनी योग-शक्ति से कुछ ही पल में उस सूखी लकड़ी को पूर्ण विकसित हरे-भरे वृक्ष के रूप में बदल दिया । नये-नये पत्ते लगे हुये थे । ऐसी अलौकिक शक्ति का दर्शन प्रत्यक्ष प्राप्त करने से उस मन्त्री का हृदय द्रवित हो उठा । वह श्रीचन्द्र जी की योग-शक्ति को भली प्रकार से पहचान गया एवं जीवन भर के लिये उसने अपने आपको उनका सेवक बना दिया ।

इसी प्रकार कन्धार में कामरान द्वारा मारे गये निरीह मृग के मृत शरीर में दयावश पुनः प्राण संचार कराकर आचार्य ने अपनी योग की दिव्य शक्तियों का अत्यन्त अद्भुत परिचय दिया । इस महान क्रिया का फल यह हुआ कि वह क्रूर द्रवित एवं परा शक्ति का कायल होकर श्री चरणों में शरणागत हुआ और कुछ वर्षों तक सन्मार्ग में लगा रहा परन्तु "जैसी हो होतव्यता, तैसी उपजै बुद्धि" के अनुसार तथा पूर्वजन्म के कुकर्म वश तथा कुमार्गी होने के कारण उसने अपने गुरुदेव की आज्ञाओं की हठ पूर्वक अवमानना की जिसके फलस्वरूप गुरुदेव के कोप का भाजन हुआ एवं श्रापवश अन्धा हो गया ।

अवतारी पुरुषों की महानतम कृपा केवल गिने-चुने शिष्यों पर ही नहीं होती अपितु समस्त सामयिक समाज पर हुआ करती है । उनका लीला विग्रह किसी विशिष्ट कार्य के लिये होता है । अतएव वे कुछ ही समय में वह कार्य पूरा करके लोगों की दृष्टि से ओझल हो जाया करते हैं । बाल-योगी श्रीचन्द्रजी वैसे तो हमेशा जंगलों में अपनी स्वरूपानुभूति में ही लीन रहा करते थे । उनकी इस त्रिगुणात्मक संसार में किसी भी प्रकार की प्रवृत्ति नहीं थी उनका रोम-रोम वैराग्यमय था । फिर भी उस परम पुरुष की प्रेरणा से उन्होंने सर्व साधारण के हितार्थ नगरों एवं ग्रामों में भी भ्रमण करना शुरूकर दिया । विद्वता एवं पराशक्ति का समयोग इस महान् पुरुष में देखकर बूढ़े बड़े तपस्वियों ने श्री आचार्य से पूछा :—

कहुरे बाल !
किसने मूड़ा किसने मुड़ाया।
किसका भेजा नगरी आया ॥ १ ॥

अर्थात् रे बालक ? बता मुझे किसने मूड़ा यानी किसने दीक्षा दी ? किसने मुड़ाया ? यानी तुझे दीक्षा की प्रेरणा किसने दी ? और किस की प्रेरणा से तू पावन वन छोड़कर इस नगरी में आ पहुंचा।

कम उम्र वाले योगी ने सुलभ धैर्य एव सहिष्णुता के साथ उन तपस्वियों की अवमानना पर ध्यान न देते हुये उत्तर दिया।

सदगुरु मूड़ा लेख मुड़ाया।
गुरु का भेजा नगरी आया ॥ २ ॥

अर्थात् हमारे दीक्षा-गुरु सदगुरु हैं। इस पवित्र मार्ग-योग की प्रेरणा विधना ने दी और गुरुदेव की आज्ञा से ही मैं नगर में आया हूं। यहां एक प्रश्न उठता है। क्यों उस सद्-गुरु सत्ता ने नगर में जाने का हुक्म दिया ? उत्तर दिया :—

चेतहुं नगरी तारहुं गांव।
अलख पुरुष का सुमिरहुं नांव ॥ ३ ॥

अर्थात् नगर एवं ग्राम में मोहनिद्रा में पड़े मानव को जगाकर समुद्र रूपी भव से पार कर दो। स्वयं उस परमात्मा को सदा सुमिरन करते रहो। कहीं लोग इसे गर्वोक्ति न समझलें कि गुरुदेव शिष्य द्वारा क्यों लोगों को तरने के लिये प्रेरणा देंगे ? इसलिये आचार्य ने आगे कहा :—

गुरु अविनाशी खेल रचाया।
अगम-निगम का पन्थ बताया ॥ ४ ॥

अर्थात् गुरुदेव ने, अपनी लीला द्वारा ही सारे संसार का खेल रचा है और वही संसार से छुटकारा देने के लिये भी मार्ग दर्शक है। गुरु ईश्वर एक हैं। कहा भी गया है :—

"ईश्वरो गुरुरात्मेति मूर्तिभेद विभागिने"

गुरुदेव का जगल्लीला करना इस ब्रह्म-सूत्र से स्पष्ट है।

"लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्"

बार-बार आचार्य शब्द प्रयोग होने से कहीं भ्रान्ति न हो जाय इसलिये इन महान् योगी के कुछ योग सिद्धान्त पर कहे गये वचन भी उद्धृत कर देना यहां उपयुक्त होगा।

आचार्य श्री द्वारा मुमुक्षुओं को उपदेश देते हुये मन के साथ युद्धकर उसे वश में करने अर्थात् मन को एकाग्र करके ही राज-योग द्वारा समाधि उपलब्धि की जा सकती है। अन्य प्रश्नों के उत्तर में अपने को अभय-पद पर पहुंचा गया बताते हैं और कहते हैं मेरे द्वारा विजय प्राप्त करने पर शंख-नगाड़े बजे थे —

विषम गढ़ तोड़ निर्भी घर आया।
नौबत शंख नगाड़ा बाया ॥

आध्यात्मिक युद्ध में आने वाले उपकरणों का निर्देश करते है :—

नाम की पाखर ॥ ५ ॥

अर्थात् मन्त्र जप रूपी दृढ़ कवच पहन लो।

पवन का घोड़ा ॥ ४६ ॥

प्राणरूप घोड़े को भली भाँति वश में करलो ।

निः कर्म जीन ॥ ४७ ॥

तत्व कर जोड़ा ॥ ४८ ॥

इत्यादि

इन महान् योगी के जीवन में एक अद्भुत घटना इनके द्वारा घटी । घटना इस प्रकार से है ।

बालकृष्ण नाम का एक इनका शिष्य एक दिन छत पर बैठा हुआ मन में किसी गूढ़ प्रश्न को सुलझाने में व्यस्त था । यकायक उन्हीं विचारो की उलझन में टहलना शुरू कर दिया । दुर्दैववश पैर फिसला और यकायक धड़ाम से नीचे गिर गया और गिरते ही उसके प्राण-पखेरू उड़ गये ।

साथी छात्र शोक-विह्वल हो उठे । उन्होंने जाकर अपने गुरुदेव श्रीआचार्य को यह दुःखद समाचार सुनाया । सुनते ही श्री आचार्य बोल उठे "नहीं वह मरा नहीं है, श्वास रोककर तुम लोगो से वह विनोद कर रहा है । अन्य शिष्यों ने कहा महाराज जी वह तो मर चुका है कहिये तो इसका शव लाकर आपको दिखावें । गुरुदेव भगवान् ने आज्ञा दी "जाओ ले आओ ।"

छात्रों ने शव श्री आचार्य के समाने रख-दिया और कहने लगे "देखिये महाराज इसका शरीर तो कभी का ठण्डा पड़ा हुआ है । श्री आचार्य ने कहा "क्यों अशुभ शब्द बोल रहे हो । बाल तो तुम सबकी बातें सुन-कर हँस रहा है, जरा मुख की ओर देखो ।" सभी ने देखा बालकृष्ण मुस्करा रहा था और पूर्ण जीवित था । यह एक घटना गुरु-देव जो योग शक्ति से पूर्ण थे उनकी करुणा कृपा एवं शक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण है ।

पूरे डेढ़ सौ वर्षों तक प्रत्यक्ष विविध लीलायें अभिनीत कर संसार के रंग-मञ्च का यह सूत्राधार वैक्रम संवत् १७०० में चंबा (यह पर्वत प्रदेश में एक देशी राज्य था, जो काश्मीर के दक्षिण-पूर्व गुरुदासपुर जिले के उत्तर और काँगड़ा से पश्चिम में पड़ता है) नगरी में रावी-तट पर अन्तर्हित हो गया । इनका निर्वाण नहीं, अन्तर्ध्यान हुआ । अतएव कई सिद्ध महात्माओं की मान्यता है कि श्रीचन्द्र महाराज चिरंजीवी हैं एवं समय-समय पर साधु-महात्माओं को दर्शन अब भी देते हैं ।

★

श्री गुरुदेव की नैपाल-यात्रा

[श्री सूरजप्रसाद शर्मा]

यात्रा का रोचक वर्णन

कलकत्ते में उल्लास पूर्ण स्वागत : मनोरम हिमालय की मनोरम दृश्यावलियां : धूनीवन का पुण्य-स्थल : नैपाल के भारतीय राजपूत द्वारा सत्कार : पशुपतिनाथ, भगवान् के दर्शन : सिद्धों और सन्तों की दृष्टि में हमारे सद्गुरु देव : प्रभुजी की सत्कृपाओं की भूरि-भूरि प्रशंसाः

३१ जनवरी सन १९६९ ई० को दोपहर के लगभग ११ बजे योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्ध गुफा, सवांई, जिला आगरा से कलकत्ते के लिए गुरु देव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने अपने साधक शिष्यों के साथ प्रस्थान दिया। कार्य क्रमानुसार टूण्डला जंकशन से कालका मेल द्वारा दूसरे दिन प्रातःकल लगभग १० बजे कलकत्ता पहुंचे। मार्ग में कानपुर, इलाहाबाद, मिर्जापुर, मुगलसराय आदि प्रमुख नगरों के जंकशन स्टेशनों पर उनके दर्शनार्थ सत्संगी भाइयों की भारी भीड़ पुष्पहार लेकर दर्शनार्थ आती रही।

हावड़ा जंकशन पर पहुंचने पर कलकत्ता में कलकत्ता-निवासी सत्संगी भाइयों का हर्षोल्लाह दर्शनीय था। प्रेमोन्माद में वे श्री गुरुदेव जी को उठाये जा रहे थे। श्री गुरुदेव अपने गले से मालाओं को उतारते उतारते थक गये किन्तु पुष्पहार पहनाने वालों की पंक्ति में कमी नहीं होती थी। पूरे एक वर्ष के बाद अपने गुरुदेव जी को अपने सामने पा सब ने हर्षोल्लास का अपूर्व परिचय दिया। कलकत्ता विशाल नगर है। इस में अधिकांश व्यापारी समुदाय रहता है। सभी सम्पन्न सु-प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। स्टेशन के बाहर श्री गुरुदेव जी को लेजाने के लिए कारों की लम्बी लाइन लगी हुई थी। गुरुदेव श्री मनमुखराय मोर की गाड़ी में बैठकर हरियाना-भवन पहुंचे और उसी दिन १ फरवरी की संध्या से ही योग-प्रचार का विशाल कार्यक्रम आरम्भ हो गया। यद्यपि अब की बार कलकत्ते के सत्संगी गुरुभाइयों ने श्री प्रभुजी से प्रार्थना कर फरवरी का पूरा महीना कलकत्ते में ही योग प्रचारार्थ निश्चित कराया था। किन्तु फिर भी वहां के प्रतिष्ठित भाई श्री लाला हरद्वारीमल आदि की कई साल से उत्कट् अभिलाषा थी कि वे सब श्री गुरुदेव जी के चरणारविन्द के साथ नैपाल धाम जाकर श्री पशुपतिनाथ जी का दर्शन करें तदर्थ इन लोगों ने श्री प्रभु जी से प्रार्थना कर उनके कार्यक्रम में परिवर्तन कराया इसके फलस्वरूप केवल मात्र एक सप्ताह ही योग प्रचार कार्यक्रम कलकत्ते में हुआ। बाद में

श्री गुरुदेव अपने कलकत्तावासी प्रेमी साधकों के साथ ६ फरवरी को बरौनी एक्सप्रेस से नेपाल यात्रा पर चल पड़े। बीच में सहीबा-बाद आदि जंकशनों पर गाड़ी बदलते हुए वे १० फरवरी की शाम को योगबनी पहुंचे। वहां से विराट नगर एवं धरान होकर धूनीबन जाने का कार्यक्रम पहले ही से निश्चय किया जा चुका था। किन्तु सायंकाल हो जाने के कारण विराट नगर जाने का ही निश्चय किया गया। योगबनी जं० स्टेशन से उतरकर विराट नगर जाने के लिए नैपाल की सीमा में प्रवेश करने पर चुंगी अधिकारियों ने सब के सामान की देखभाल करना प्रारंभ दिया। इतने में ही धरान वाले लाला रघुनाथ प्रसाद श्री गुरुदेव जी के आतिथ्य के लिए आ पहुंचे उन्होंने श्री गुरुदेव जी को धरान ले जाने के लिए एक स्टेशन वेगन का पहले से ही प्रबन्ध कर रखा था। श्री गुरुदेव जी को इस बात का भान भी नहीं था कि यहां भी कोई हमारे आतिथ्य के लिए इतने सज्जन स्वभाव का व्यक्ति मिलेगा और वह सत्संगियों सहित पूरी-पूरी सेवा का भार वहन करेगा। लाला रघुनाथ प्रसाद कलकत्ते वाले गुरु भाई चौधरी पन्नालाल के सम्बन्धी हैं। चौ० पन्नालाल ने ही श्री गुरुदेव जी की नैपाल यात्रा पर उनके आतिथ्य के लिए अपने परम स्नेही संबंधी लाला रघुनाथ सहाय को पत्र लिखकर संकेत कर दिया था। लाला रघुनाथ सहाय पूरे आग्रह के साथ श्री गुरुदेव जी को विराटनगर में न ठहराकर धरान ही ले गये। वहां सभी प्रकार से श्री प्रभुजी की उत्कृष्ट सेवा की गई लाला रघुनाथ सहाय गृहस्थी में रहते हुए भी एक उज्वल सन्त स्वभाव के व्यक्ति हैं। साथ ही प्रतिष्ठावान हैं। इस क्षेत्र के भ्रमण में हम सबको मालूम पड़ा कि लाला रघुनाथ-सहाय का कोई विरोधी व्यक्ति है ही नहीं। वे अपनी वाणी से जिसको जो आज्ञा देते वे वही पालन करने के लिए प्रस्तुत रहता था।

धरान से धूनीवन

श्री लाला रघुनाथ जी ने श्री गुरुदेव जी के धूनीवन जाने के के लिए एक अच्छे स्टेशन वैगन का पहले से प्रबन्ध कर दिया था फल-स्वरूप सभी सत्संगियों सहित ११ फरवरी को श्री गुरुदेव जी धूनीवन के लिए चल पड़े। धरान से चलने में कुछ देर हो गयी थी जिससे वे ११ फरवरी की सायं लगभग २-३ बजे धूनीवन के लिए चल पड़े। श्री गुरुदेव जी का कोई कष्ट न हो इस भावना से लाला रघुनाथ सहाय भी धूनीवन की यात्रा मे साथ चले। जिस मार्ग से हम लोग चले थे वह पहाड़ी कच्चा मार्ग था। ड्राइवर भी विशेष समझदार नहीं ज्ञात पड़ता था, जिसके कारण गाड़ी को पानी में पास कराते हुए दो स्थानों पर वह कीचड़ में फँस गई और उसको निकालने में बहुत समय लगा। एक स्थान पर तो गाड़ी को रात्रि में निकाल ही नहीं पाये और सभी सत्संगियों सहित निकटवर्ती गांव

के एक स्कूल में श्री गुरुदेव ने निवास किया। दूसरे दिन लाला रघुनाथ प्रसाद जी ने आस-पास के गांव के पहाड़ी लोगों को बुलवाकर गाड़ी को कीच से निकलवाया और दूसरे दिन लगभग १ बजे धूनीवन पहुंच पाये। धूनीवन की धूनी परम सिद्ध महात्मा बनखण्डी जी की पुण्य-स्मृति है। श्री बनखण्डी जी महाराज ने किसी समय इस धूनीवन में निवास किया था। उनकी गणना वहां के उच्चतम सिद्धों में है। जब कोई साधक उस वन में रहकर किसी विशेष प्रकार का अनुष्ठान करता है तो बनखण्डी जी की कृपा को अवश्य प्राप्त करता है। उस वन में चलने पर सभी का मन स्वभावतः एकाग्र होने लगता है और साधक एक विशेष प्रकार की शान्ति का अनुभव करता है। हम लोग धूनीवन में बहुत अधिक तो नहीं रह पाये क्योंकि वहाँ घनघोर जंगल था एवं श्री गुरुदेव जी के साथ में विरक्त एवं गृहस्थ सभी प्रकार के भाई-बहन थे। अतः धूनीवन में श्री बनखण्डी जी का धूनी के दर्शन कर व दोपहर को भोजन बना, खाकर यात्रा मण्डली वहाँ से लौट आयी। किन्तु धूनीवन के इस विशेष चमत्कार को प्रायः सभी ने अनुभव किया कि वहाँ उनकी कोई विशेष शक्ति अवश्य सहायक है जिससे सभी के मन अनायास ही एकाग्र होते जा रहे थे। धूनीवन से लौटने पर अब कोई मार्ग का अन्तराय नहीं था। हम लोग एक दूसरे पहाड़ी मार्ग से रात के लगभग ११ बजे तक धरान वापस आ गये। धरान पहुंचकर श्री प्रभु जी ने आरती-पूजन किया एवं रात्रि के भोजनादि से निवृत्त होकर सो गये।

प्रातःकाल नित्यकर्मादि से निवृत्त होकर भोजन किया और दो स्टेशन वैगनों में बैठकर सब लोग नीलम पहुंचे। यहाँ नेपाल सरकार ने गंगा जी पर एक सुन्दर पुल निर्मित किया है। इस प्रान्त में यह पुल अपने ढंग का विलक्षण एवं दर्शनीय है। इस पुल को देखते हुए आलोक रात होने पर नीलम स्टेशन पर पहुंचे और यहां से लगभग १० बजे रात की गाड़ी पकड़कर रेलवे स्टेशन दरभंगा एवं यहाँ से गाड़ी बदलकर दूसरे दिन दोपहर को लगभग दो बजे रक्सौल जा पहुंचे। यह स्टेशन भारत भूमि में है। यहाँ लगभग ३ मील की दूरी पर बीरगंज शहर है जो नेपाल की सीमा में है। कलकत्ते के माननीय भाई सेठ हरद्वारीमल जी ने हमारे लिए बीरगंज से काठमाण्डू जाने के लिए वायुयान के टिकटों का प्रबन्ध किया था किन्तु उनका पत्र आने के पूर्व ही वायुयान की सभी सीटें बुक हो चुकी थीं। इसलिए हम लोगों को वायुयान की सुविधा तो नहीं मिल पायी किन्तु फिर भी वहाँ से लाला हरद्वारीमल के पुरुषार्थ से उसी समय स्काईलैण्ड ट्रान्सपोर्ट वालों की सहायता से हमें काठमाण्डू जाने के लिए एक ट्रक मिल गया जिसमें सवार होकर हम सभी १४ फर-

वरी की रात्रि को ही काठमाण्डू रवाना हो गये। हमारा ट्रक यद्यपि सारी रात पूर्ण यात्रा नहीं कर पाया। बीच में एक जगह विश्राम करना पड़ा क्योंकि यह एक पर्वतीय मार्ग था अतः दूसरे दिन दोपहर से पूर्व ही हम काठमाण्डू पहुंच गये।

नेपाल की राजधानी काठमाण्डू में

काठमाण्डू में हम लोग दोपहर को पहुंचे। शिवरात्रि का दिन था। भगवान् पशुपतिनाथ के दर्शन की तीव्र-लालसा सब के मन में थी। अतः हम उसी ट्रक द्वारा पशुपतिनाथ की गोशाला में जहां हमारे ठहरने की व्यवस्था पहले से ही स्काईलैण्ड ट्रांसपोर्ट वालों ने करा रखी थी पहुंचे और वहां पहुंचकर अपना सामान निश्चित कमरों में रखकर शीघ्र ही भगवान् पशुपतिनाथ के सामने से बहने वाली बागमती गंगा में स्नान किया; और दर्शनार्थियों की भारी भीड़ में से गुजरते हुए भगवान् पशुपतिनाथ को गंगा का पवित्र जल अर्पित किया एवं दर्शन प्राप्त किए। भगवान् के पवित्र दर्शन-दर्शनार्थियों की भारी भीड़ होने के कारण हम लोग बड़ी कठिनाई से ही कर पाये। दर्शन करके हम अपने निवास-स्थान गोशाला में आ गये और शाम समय यथोचित फलाहार किया।

शिवरात्रि के व्रत के बाद दूसरे दिन से काठमाण्डू भ्रमण के कार्यक्रम बनाये गये। शिवरात्रि से अगले रोज 'स्काईलैण्ड ट्रान्सपोर्ट' वालों ने श्री गुरुदेवजी के भ्रमण के लिये एक कार का प्रबन्ध कर दिया। इसके अतिरिक्त एक टैक्सी किराये पर लेकर हम काठमाण्डू के विभिन्न स्थानों पर घूमे। दिव्य-मन्दिरों के दर्शन प्राप्त किए। इधर भरतपुरवाले लाला हरिचरन जी ने भारतीय राजदूत श्री राजबहादुर जी को श्री गुरुदेव जी के आगमन की सूचना पहले से ही देदी थी। उन्होंने गोशाला में पहुँचकर बड़े प्रेम के साथ श्री गुरुदेव जी के पवित्र दर्शन प्राप्त किये। साथ ही उन्होंने नेपाल के प्रमुख स्थानों के अवलोकन करने के लिये प्रार्थना की; तथा यातायात की सुविधा के लिये एक बड़ी जीप का प्रबन्ध भी अपनी ओर से कर दिया, जिसके द्वारा श्री गुरुदेव जी के साथ हम सबने तीसरे दिन सर्वप्रथम भारतीय सहायता द्वारा निर्मित 'हाइड्रो इलैक्ट्रिक प्रोजैक्ट' को देखा, जहाँ पर पूरे काठमाण्डू शहर के लिये बिजली तैयार की जाती है एवं जल का वितरण किया जाता है। इस हाइड्रो इलैक्ट्रिक प्रोजैक्ट को देखकर लगभग एक मील ऊपर गये जहाँ पर बागमती की धारा को रोक कर एक विशाल जलाशय तैयार किया गया है। इसमें से सारा पानी हाइड्रो इलैक्ट्रिक को आता है। यह स्थान बिलकुल जंगल में है। स्थान को देखने की लगन हम सभी लोगों में मन में थी। यहाँ से हम सब और ऊपर

बाग द्वार की ओर बढ़े, जहाँ बागमती की पवित्रधारा दो पहाड़ों के अन्तराल से बहती आरही है। यहां से बागद्वार लगभग और चार मील ऊपर है। जहां से बागमती की धारा बागमती-गंगा के रूप में प्रगट होकर नीचे को ओर प्रवाहित होने लगी है। यही वह पवित्र बागमती धारा है जिसमें किसी समय आनन्दकन्द योगयोगेश्वर महाप्रभु श्री रामलालजी (हमारे दादागुरु) स्नान किया करते थे।

इससे ऊपर जहां से वह धारा आई है वहीं तिब्बत-भूटान और नेपाल की सीमा मिलती है। वह स्थान अति दुर्गम है। जहां पर कि स्फटिक मणि का पहाड़ है, वही स्थान नेपाल वाले सदाशिव (हम लोगों के परमगुरु एवं महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के गुरुदेव) के रहने का स्थान है। उन्हीं की इस पवित्र वनस्थली के दर्शन प्राप्त करके हम पुनः काठमाण्डू लौट आये। इन वनों का भ्रमण करते हुए मन में श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों की स्मृति रह-रहकर याद आती थी। हमारे परमपूज्य गुरुदेव श्रीचन्द्र-मोहन जी महाराज बागमती की उस पवित्र धारा को बड़े गम्भीर भाव से देख रहे थे और भाव-विभोर होकर कहते जा रहे थे कि यही वह बागमती गंगा है जिसमें, इन वनों में रहते हुए, कभी श्री प्रभुजी स्नान किया करते थे।

इन पवित्र स्थानों को देखने के बाद हम लोगों ने उस 'गोकर्ण' नामक राजकीय उद्यान को देखा जो नेपाल महाराज की ओर से सुरक्षित किया गया है, जिसमें वन्यय पशु चीता आदि अब भी स्वतन्त्रता से रहते हैं। इस उद्यान को देखने के बाद एक ऐतिहासिक बौद्ध-स्तंभ को देखा, जहाँ पर भूटानी लोगों का मेला लगा था। इन भूटानियों के मध्य एक लामा महात्मा जो काफी आयु के मालूम होते थे, जिनकी आँखों की भवें लटककर नीचे आ गयीं थीं वे उन सबों के बीच में बैठे हुए थे। उस महात्मा से हमारे आदरणीय भाई हरिभक्त चैतन्य जी ने कुछ बातचीत की। वार्तालाप के प्रसंग में उसने अपने पूर्व-जन्म की कुछ बातें बताईं। यद्यपि वे हिन्दी नहीं जानते थे फिर भी दुभाषियों के माध्यम से भाई श्री चैतन्य जी ने उनकी बातों को समझा। ये भूटानी प्रायः सभी माँसाहारी प्रतीत होते थे; क्योंकि इनके मुख से बहुत दुर्गन्ध आ रही थी। यह सभी अपनी भाषा में अपने मजहब के अनुसार कोई स्तोत्र पाठ, कुछ गायन संकीर्तन आदि कर रहे थे।

साधुओं से वार्तालाप

मैं और मेरे परमादरणीय गुरु भाई जम्मू वाले श्री ब्रह्मचारी हरिभक्त चैतन्य जी ने गुरुदेव जी से आज्ञा प्राप्त की और पशुपति-नाथ भगवान् के मन्दिर में दर्शनार्थ गये, उस समय हमारे साथ एत्मादपुर के लाला लाज-पतराम जी व प्रिय भाई सोनपाल आदि और

भी कई एक गुरु—भाई साथ थे । हम सबने मन्दिर में जाकर भगवान् भूतभावन पशुपति-नाथ की दिव्य आरती को देखा । आरती का वह दृश्य एक अद्भुत दृश्य था जो हमने अपने जीवन में पहली बार ही देखा था । भक्ति भाव से परिपूरित नर-नारियों ने वहां पर सहस्रों घृत दीपक जलाये हुए थे । सारे मन्दिर में जगमगाहट हो रही थी, मन्दिर में चारों ओर से बजाये जाने वाले घण्टे घड़ियाल एवं शंखों की ध्वनि से मन्दिर का आकाश जोरों से गूंज उठा था । सभी ध्वनियों के मिलने से मेघ गर्जन का आभास स्वभाविक हो रहा था । हम सब इस दिव्य दृश्य को देख मन्दिर के बाहर निकले और मन में विचार किया कि श्री पशुपतिनाथ जी के आस-पास विशाल आंगनों ठहरे हुये साधुओं के दर्शन करें । महात्माओं की टोलियें देखते ही बनती थीं उनकी लम्बी-लम्बी जटायें, रुद्राक्ष शृंगार एव सामने जगमगाती धूनियें उनकी दिव्यता की परिचायक थीं । हम सब घूमते-घूमते इन की टोलीओं में जा घुसे । श्री हरिभक्त चैतन्य जी ने खेचरी-भूचरी और वज्रोली एवं वज्रोली विषयक कुछ प्रश्न उन महात्माओं से किये, सभी महात्मा अपने भाव और सामर्थ्यानुसार उत्तर देते रहे, किन्तु उन सबके उत्तर यथोचित नहीं थे। उन सबके निकट ही थोड़ी दूर पर एक दिव्य तेजस्वी महात्मा जटाधारी बैठे थे जिनके मस्तक से स्वाभाविक शान्ति टपक रही थी । उनके मुख मण्डल को देखकर यह आभासित होता था कि यह कोई अनुभवी महापुरुष है । थोड़ी देर बाद अपनी मौन-मुद्रा को त्यागकर वे अपनी भाव गम्भीर वाणी से भाई हरिभक्त चैतन्य जी से बोले कि भाई ब्रह्मचारी तुम यह बताओ कि तुम इन सब साधुओं की परीक्षा कर रहे हो या तुम्हें सच्ची जिज्ञासा है । उस महात्मा के इस प्रकार कहने पर ब्रह्मचारी जी ने उत्तर दिया कि महाराज इन क्रियाओं को जानने की मेरे मन में सच्ची जिज्ञासा है । इस पर वह महात्मा प्रसन्न होकर बोले यदि तुम्हें इन क्रियाओं की सच्ची जिज्ञासा है तो तुम जिला आगरा में टूण्डला के पास सवाई गांव में एक आश्रम है वहां पर एक योगिराज रहते हैं जो सब प्रकार से परिपूर्ण हैं उनसे जाकर तुम पूछ सकते हो । उन अपरचित महात्मा के मुख से अपने गुरुदेव जी की और अपने आश्रम की महिमा को सुनकर हम सब बड़ा भारी सन्तोष हुआ और सभी के हृदय आवित हो उठे । और हम सब इन सब बातों की चर्चा करते हुये अपने स्थान पर लौट आये जहां हम ठहरे थे ।

एक और दिव्य घटना

नैपाल की राजधानी काठमाण्डो में रहते हुये हम लोग प्रति दिन कहीं न कहीं भ्रमणार्थ जाया करते थे । एक रोज हम अपने श्री

गुरुदेव जी के साथ पशुपति नाथ गौशाला से बाहर निकले तो एक बड़ी आश्चर्यजनक घटना घटी जिसको देखकर हम सभी आश्चर्य चकित हो गये। घटना इस प्रकार थी गौशाला के बाहर एक जटाधारी महात्मा खड़े थे जिन्होंने अकस्मात श्री गुरुदेवजी के चरण-कमलों में मस्तक रखकर परम नम्रता पूर्वक प्रणाम किया, और विनम्रता पूर्वक बोले कि महाराज जी मुझे प्रसाद दे दीजिये जिससे मुझे अपने मार्ग में सफलता मिले। श्री महाराज जी ने उसे प्रसन्नता पूर्वक आशीर्वाद दिया और भ्रमण करने चले गये, किन्तु उसको कोई विशेष रूप से प्रसाद नहीं दिया जा सका। दो दिन बाद फिर वही महात्मा आरती के समय दर्शनार्थ आये। श्री गुरुदेव जी को प्रणाम करके पुनः अपनी सफलता की प्रार्थना की। श्री गुरुदेव जी ने उनकी विनय को सुनकर पुष्प का प्रसाद दिया, उस प्रसाद को पाकर दण्डवत् प्रणाम कर वह महात्मा थोड़ी दूर चलकर पुनः लौट आये, एवं श्री महाराज जी से पुनः प्रार्थना की कि महाराज जी एक चित्र आप मुझे अपने गुरुदेव जी का दे दीजिये जिसकी आप पूजा करते हैं। मुझे इनके दर्शन सन् १९५२ में दरभंगा के जंगलों में हुये थे। इनकी कृपा से ही मैं आपके दर्शनार्थ आया हूं। आपके हृदय में उन्हीं का तेज सब प्रकार से ओत-प्रोत है। उस महात्मा ने श्री प्रभु जी के दर्शन सन् १९५२ में होने का जिकर किया जो गुरुदेव के गुरुदेव, योगेश्वर श्री प्रभु रामलाल जी महाराज थे, तो सभी को बड़ा भारी आश्चर्य हुआ और उस महात्मा से पूछा कि महात्माजी यदि आपको इनके दर्शन सन १९५२ हुये तो उनका नाम बता दीजिये कि क्या है। यह सुन कर वह महात्मा काफी सोचता रहा। बाद में बोला इनका नाम भी राम के नाम पर है किन्तु पूरा मुझे स्मरण नहीं आरहा है फिर अपने आप हो थोड़ी देर बाद ही उसने श्री प्रभुजी का नाम बतलाया कि इनका नाम योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज है और यह सर्व समर्थ अणु-परमाणुओं में ओत-प्रोत हैं। उस अपरिचित महात्मा के मुख से श्री प्रभु जी की महिमा इस प्रकार सुनकर हम सभी को परम आह्लाद हुआ यह जानकर कि दिव्य—दृष्टि प्राप्त सभी महात्मा हमारे आनन्द-कन्द परम गुरु योगेश्वर श्री प्रभुजी एवं गुरुदेव जी को भली प्रकार जानते और समझते हैं। जिस समय उस महात्मा ने श्री प्रभु जी का परिचय दिया तो मुझे उस समय परम ख्याति प्राप्त महात्मा श्री देवरा बाबा जी का समरण आने लगा, क्योंकि जब मैं उनके दर्शन करने प्रयाग में गया था तो उन्होंने भी स्वतः ही अपने मुख से भी प्रभुजी की कृपाओं की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी।

नैपाल के इन सब पवित्र दृश्यों को देखकर हम सब लोग २३ फरवरी को भारत लौट आए। और पटना होकर २३ फरवरी की रात्रि में लगभग १० बजे वाराणसी आ गए जहां कि काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय में योग-प्रचार कार्यक्रम, श्री गुरुदेव जी ने सम्पन्न कराया।

आरती-स्तुति

योग प्रशिक्षण केन्द्र, श्री सिद्ध गुफा, सवाँई जिला-आगरा में प्रातः सायं
होने वाले आरती-स्तुतियों का भावार्थ सहित संग्रह

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

(गीता ९/२२)

जो अनन्यभाव से युक्त हो कर मुझ परमदेव नारायण को आत्म रूप से जानते हुए मेरा निरन्तर चिन्तन करते हुए मेरी श्रेष्ठ—निष्काम उपासना करते हैं, निरन्तर मुझ में ही स्थित उन परमार्थज्ञानियों का योग-क्षेम मैं वहन करता हूँ ।

आरती का उद्गम

[श्री सद्गुरुदेव]

यद्यपि श्री सिद्ध गुफा से वितरित होने वाली "आरती पूजन" नामक छोटी पुस्तक में श्री सिद्ध गुफा सवाई व उसकी शाखाओं में होने वाली आरती–स्तुतियों का संग्रह नियमानुसार पुस्तकाकार में प्रकाशित होता रहता है और यह पुस्तक प्रायः आश्रम के सभी सत्संगियों के घरों में विद्यमान है। किन्तु इस पुस्तक में प्रकाशित होने वाली आरती एवं स्तुतियें संस्कृत भाषा में है, अतः संस्कृत शब्दों के अर्थों को न समझने के कारण अधिकांश साधक श्री प्रभुजी की आरती–पूजन एवं स्तुतियें करते तो नित्य-नियम से हैं किन्तु इन आरती स्तुतियों में क्या कहा गया है इसका अर्थ-ज्ञान प्रायः अधिक लोगों को नहीं होता। अतः ये सभी आरती-स्तुतियों के अर्थ-ज्ञान पाने को लालायित रहा करते हैं। इसी उद्देश्य को दृष्टि में रखकर सभी सत्संगियों के हितार्थ "सिद्धयोग" के इस अङ्क में आरती एवं स्तुतियें भावार्थ सहित प्रकाशित कर रहे हैं। नीचे लिखे जाने वाली आरती के विषय में कुछ आवश्यक बातें और समझा देना आवश्यक है। सर्व प्रथम बात यह है कि यह आरती किसी मनुष्य की रचना नहीं है। मेरे गुरुभाई श्री ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी महाराज को श्री गुरुदेव के परमानुग्रह, से सम्प्रज्ञात समाधि प्राप्त थी और उसी समाधि के बल से वह लोक-लोकान्तरों को अपने ध्यानाभ्यास से देखा करते थे। उन्होंने अपने ध्यानाभ्यास में परम जिज्ञासा पूर्वक भगवत् धाम श्री गोलोक धाम को देखा। वहां पर एक दिव्य उपवन में आनन्दकन्द श्री गुरुदेव जी एवं भगवान् श्री कृष्ण किसी दिव्य सिंहासन पर बैठे हुए थे और सखी वृन्द अपनी दिव्य ध्वनि में इसी आरती के उच्चारण करते हुए अपने पवित्र मुखों से गा रही थीं। अतः यह आरती गोलोक धाम में सुनी गई थी। इस आरती के आधे भाग को सुनकर श्री गोपालानन्द जी अपने ध्यान योग से उठगये थे और उन्होंने उठकर के श्री गुरुदेव जी योग–योगेश्वर महा प्रभु श्री रामलाल जी के चरणारविन्द में प्रार्थना की कि हे प्रभो श्री नित्य निकेतन

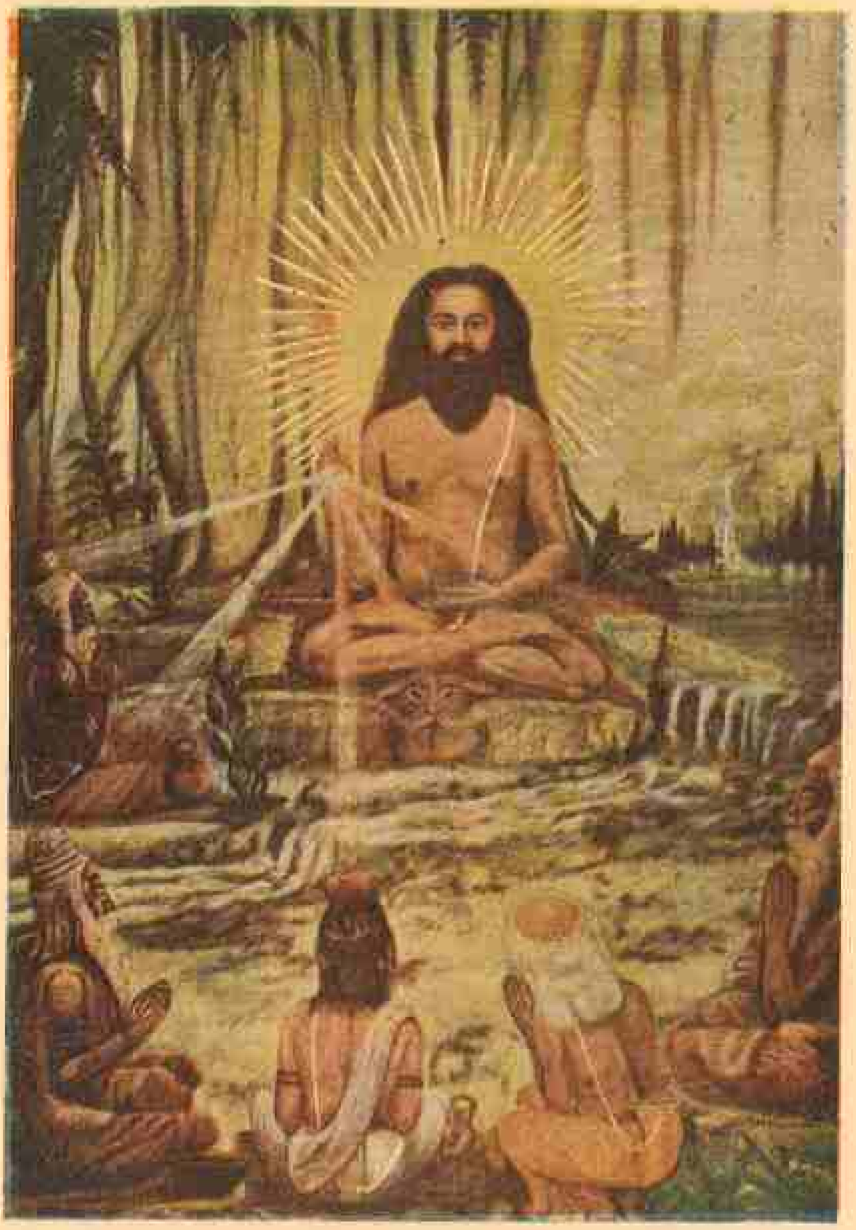

शक्ति-पात
योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलालजी महाराज

गोलोक धाम में आपकी यह आरती मैंने सुनी है जिस समय श्री प्रभु जी के चरणारविन्द में तीन पद्य अर्थात् आधाभाग सुनाया तो प्रभु जी हंस पड़े बोले बेटा तुम पूरी आरती नहीं सुन सके इसका आधाभाग जो शेष रह गया है उसको भी सुनो और फिर इसको नोट कर लेना फिर यही आरती सर्व साधारण में प्रचारित हो जायेगी एवं सभी लोग अपने-अपने घरों में इसको गाकरके सुख-शान्ति पायेंगे। इस निबन्ध में सद्गुरु स्तुति के दो तीन श्लोक लिख कर नीचे वही आरती भावार्थ सहित लिखी जाती है जिसको पढ़कर हर साधक को आरती-पूजन की पुस्तक में लिखी जाने वाली इसी आरती एवं और शेष स्तुतियों को भावार्थ सहित जान लेने पर महान् सन्तोष होगा ।

अखण्ड मण्डलाकारं, व्याप्तं येन चराचरं ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥

अर्थात् जिस व्यापक सत्ता ने अखण्ड मण्डलाकार अंड ब्रह्माण्डों को व्याप्त किया हुआ है उसके स्वरूप को जिसने दिखला दिया ऐसे श्री गुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूं ।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु, गुरुः साक्षान्महेश्वरः ।
गुरुरेकं परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥

अर्थात् वे गुरुदेव ही ब्रह्मा हैं वही हैं विष्णु हैं एवं वही देवाधिदेव महादेव हैं। इसके अतिरिक्त साक्षात पर ब्रह्म है। ऐसे श्री गुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूं ।

अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥

अर्थात् अज्ञान रूपी अंधेरे में ज्ञानाञ्जन की सलाई लगाकर जिन्होंने आंखे खोल दीं ऐसे गुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूं ।

दिव्य—आरती

चरणारविन्दं गुरुदेव नमामि ।
गुरुदेव शरणं गुरुदेव नमामि ।।

हम श्री गुरुदेव की शरण है और उनको नमस्कार करते हैं ।

भवो भव्यभावं त्रयताप हारं ।
भवभय विनाशं गुरुदेव नमामि ।।

जो गुरुदेव भावातीत हैं एवं त्रयताप का नाश करने वाले, संसार के आधि व्याधि रूप सभी भय को दूर करने वाले हैं ऐसे गुरुदेव को नमस्कार है ।

कल्याण रूपं आनन्दकदं ।
धारामृतं शिव गुरुदेव नमामि ।।

जो कल्याण के रूप हैं और आनन्द की जड़ हैं जो अनादि प्रवाह से अमृतमय स्वयं सदा शिव हैं उन गुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूं ।

अरेण्यं वरेण्यं सुरेशं रमेशं ।
त्रयदेव रूपं गुरुदेव नमामि ।।

जो सब प्रकार से अर्चना करने योग्य वरेण्य जो देवताओं के मालिक एवं रमापति त्रयदेव रूप श्री गुरुदेव है उनको मैं नमस्कार करता हूं ।

न जानामि जापं न जानामि ध्यानं ।
पशुपति रूपं गुरुदेव नमामि ।।

मैं जप व ध्यान कुछ भी नहीं जानता हूं पशुपति स्वरूप गुरुदेव आपका नमस्कार करता हूं ।

भूतेश प्रणम्यं अनन्त स्वरूपं ।
भक्तस्यत्राणं गुरुदेव नमामि ।।

हे अनन्त स्वरूप जिनको स्वयं भूतनाथ नमस्कार करते हैं भक्तों की रक्षा करने वाले श्री गुरुदेव मैं आपको नमस्कार करता हूं ।

घटाकाश गुप्तं महाकाश रूपं ।
चिदाकाश व्यक्तं गुरुदेव नमामि ।।

हे घटाकाश में छिपे हुऐ महाकाश के रूप चिदाकाश के रूप में प्रगट होने वाले गुरुदेव मैं आपको नमस्कार करता हूं ।

अकल्पं अनूपं तपन्तं दिगन्तं ।
अगोगौचराणं गुरुदेव नमामि ॥

जो कल्पनातीत हैं और उपमा रहित है जिनका तेज दिग-दिगान्तरों में फैला हुआ है । जिनको सर्व साधारण प्राप्त नहीं कर सकता ऐसे गुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूं ।

सिद्धि अगम्यतत्व पाद पद्मे ।
प्रबुद्धं शुभेशं गुरुदेव नमामि ।

हे गुरुदेव आपके पवित्र चरण कमल केवल मात्र सिद्धियों के प्राप्त करने से ही पाये जा सकते है प्रबुद्ध कल्याणों के मैं मालिक मैं आपको नमस्कार करता हूं ।

नोट—प्रातः स्मरण आगे के पृष्ठ पर है :—

- जो ईमानदारी, सत्य तथा परहितयुक्त कमाई का हो–वह पैसा शुद्ध है ।
- जिसमें सम्मान, सत्य तथा हित भरा हो–ऐसा वर्ताव शुद्ध है ।
- जिसमें निज सुख वासना का त्याग एवं प्रेमास्पद को सुखी बनाने की-एकान्त इच्छा और क्रिया सहज हो—वह प्रेम शुद्ध है ।
- जिस सेवा के बदले में निष्काम सेवा की वृत्ति उत्तरोत्तर बढ़ती हो वह सेवा शुद्ध है ।
- जिस व्यापार में हिंसा, पर अहित, चोरी आदि न होकर केवल आजी-विका निर्वाहार्थ सत्यता हो–वह व्यापार शुद्ध है ।

प्रातः स्मरण स्तोत्र

प्रातः स्मरामि भव सागर मग्न पोतं,
श्रोतंनरोमय हरस्य सुधारस्य ।
लोक प्रपञ्च जनितांधतमो दिनेशं,
श्री रामलाल प्रभुमशिनवावतारं ॥

भवसागर में डूबते हुऐ के लिये जो पोत स्वरूप और मनुष्य मात्र के पापों को हरने वाले वह अमृत के श्रोत हैं । इसके अतिरिक्त लोक प्रपंचों से जनित जो अन्धकार के लिये सूर्य के समान हैं ।

प्रातस्स्मरामि परम गुरु मिष्टदेवं ।
भूतेशवदभयहरं हरिवद्दयालु
तेजस्विनं तपनद्विधुवं मनोज्ञं,
श्री रामलालमखिलेशमनाथनाथं ।

मैं अपने इष्ट परमगुरुदेव का प्रातःकाल स्मरण करता हूं जो भगवान् भूतेश सदा शिव के समान भय को हरने वाले हैं । हरि के समान दयालु हैं । सूर्य के समान तेजस्वी, चन्द्रमा, के समान मनोज्ञ, अनाथों के नाथ अखिलेश प्रभु श्री रामलाल जी को नमस्कार करता हूं ।

यस्य प्रसादात्पतिता स्त्सुपावना:,
भवन्ति संसार सुतारणः शिवाः
योगीश्वराणं परमेश्वरं हरिं,
श्री रामलाल प्रभुमशिमाश्रये ।

जिनके कृपा कण को पाकर अत्यन्त पतित भी परम पवित्र होकर संसार को तराने की सामर्थ्य वाले बन जाते हैं योगीश्वरों के ईश्वर प्रभु श्री रामलाल जी की मैं शरण ग्रहण करता हूं ।

यस्य कृपां शांशात्सुविष्टपापस:,
तृतीयनेत्रेय संभुव गतेन ।
महा प्रकाशेन सुसिद्ध लोकं,
मीक्षे चवाह्यो मुलखसुमाश्रये ॥

जिसकी कृपांश को प्राप्त करके पाप नष्ट हो जाने पर उदित तीसरे नेत्र के द्वारा श्री मुलराज जी ने प्रत्यक्ष वत् सिद्धलोक को देख लिया । ऐ प्रभु रामलाल ही का मेरा आश्रय है ।

निर्वाणाष्टक

आदिनाथ भगवान शिव के इस निर्वाणाष्टक का वर्णन श्री तुलसीकृत-रामायण के उत्तरकाण्ड में मिलता है। काकभुसुण्ड के उपाख्यान में यह स्तोत्र कहा गया है। काकभुसुण्ड भगवान शिव का परम भक्त था किन्तु भगवान विष्णु के प्रति उसके मनमें भक्ति भाव नहीं था। उसके गुरुदेव उसको समझाते रहते थे कि वह भगवान शिव की भक्ति अवश्य ही करे। किन्तु त्रिगुणातीत भगवान नारायण में भी श्रद्धा रखनी चाहिए। गुरुदेव का यह उपदेश काकभुसुण्ड को अच्छा नहीं लगता था। एक दिन उसके गुरुदेव उस समय वहां आये जबकि वह भगवान आदिनाथ के चरणों में मन लगाकर मंत्र जप कर रहा था। उसी समय अपने गुरुदेव का आगमन देखकरके काकभुसुण्ड ने मन में विचार किया कि यह अभी मुझे नारायण भक्ति का उपदेश करेंगे अतः वह उनकी ओर पीठ करके भगवान सदा शिव का भजन करने लगा। उसके इस कार्य पर उसके गुरुदेव को तो कोई दुःख नहीं हुआ किन्तु भगवान सदा शिव को उसका यह अनुचित व्यवहार सहन नहीं हुआ इस पर मंदिर से आकाशवाणी हुई:—

मंदिर माझ भई नभबानी ।
रे हतभाग्य अग्य अभिमानी ॥
जद्यपि तव गुरु के नहिं क्रोधा ।
अति कृपाल चित सम्यक बोधा ॥

मंदिर में आकाशवाणी हुई कि अरे हतभाग्य मूर्ख अभिमानी यद्यपि तेरे गुरु को क्रोध नहीं है वे अत्यन्त कृपालु चित के हैं और उन्हें यथार्थ ज्ञान है।

तदपि साप सठ दैहउँ तोही ।
नीति विरोध सोहाइ न मोही ॥
जो नहिं दंड करौं खल तोरा ।
भ्रष्ट होइ श्रुति-मारग मोरा ॥

तो भी हे मूर्ख तुमको शाप दूंगा। नीति का विरोध मुझे अच्छा नहीं लगता अरे दुष्ट यदि तुझे दण्ड न दूं तो मेरा वेद-मार्ग ही भ्रष्ट हो जाये।

जे सठ गुरु सन इरिषा करहीं ।
रौरव नरक कोटि जुग परहीं ॥
त्रिजग जोनि पुनि धरहिं सरीरा ।
अयुत जन्म भरि पावहिं पीरा ॥

जो मूर्ख गुरु से ईर्ष्या करते हैं वे करोड़ों युग तक रौरव नरक में पड़े रहते हैं फिर वे तिर्यक योनियों में शरीर धारण करते हैं और दस हजार जन्मों तक दुख पाते रहते हैं।

बैठ रहेसि अजगर इव पापी ।
सर्प होहि खल मल मति व्यापी ।।
महा बिटप कोटर महुं जाई ।
रहु अधमाधम अध गति पाई ।।

अरे पापी ! तू गुरु के सामने अजगर की भांति बैठा रहा । रे दुष्ट ! तेरी बुद्धि पाप से ढक गयी है । तू सर्प हो जा और अरे अधम से भी अधम ! इस अधोगति को पाकर किसी बड़े भारी पेड़ के खोखले में जाकर रह । जब मन्दिर से इस प्रकार की आकाश वाणी हुई तो गुरुदेव का हृदय कम्पायमान हो उठा । हृदय में दया का समुद्र उमड़ पड़ा और उन्होंने भगवान् शिव के सम्मुख हाथ जोड़कर स्तुति की—यह स्तुति निर्वाणाष्टक नाम से प्रसारित है । भगवान् शिव को यह स्तुति अति प्रिय है । काकभुशुण्ड के गुरु उस विप्र मुख से इस स्तुति को सुनकर भगवान् सदा शिव बड़े प्रसन्न हुए । उन्होंने उस ब्राह्मण को वर मांगने की आज्ञा प्रदान की । भगवान् सदाशिव को प्रसन्न देखकर ब्राह्मण ने प्रार्थना कि हे प्रभो यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मेरे शिष्य को जो आपने श्राप दिया है वह मिथ्या हो जाय । भगवान् आदिनाथ ने ब्राह्मण को उत्तर दिया कि हे ब्राह्मण मेरी वाणी तीन काल में भी मिथ्या नहीं होती । इसको मेरे शाप के अनुसार चौरासी लाख योनि भोगनी तो पड़ेगी ही किन्तु यदि इस पर तुम्हारा प्रेम है और दयावश होकर इसको बचाना चाहते हो तो इसको किसी भी योनि में दुख का अनुभव नहीं होगा और आज की यह घटना इसको याद रहेगी । और भगवान् श्री हरि के चरणों में इसका प्रेम हो जायेगा । भगवान् सदा शिव ब्राह्मण की हुई स्तुति को सुनकर अपने दिये हुए शाप को वर के रूप में बदलकर अन्तर्धान हो गये । इसी का नाम है—

कर्तुमकर्तुं अन्यथा कर्तुं सर्वथा, शक्तः

अर्थात् करदे, किये को बिगाड़ दे और बिगाड़े को फिर बनादे, ऐसे ही सर्व समर्थ होते हैं ।

समाधिलीन भगवान शिव

निर्वाणाष्टक

नमामीशमीशान निर्वाण रूपम् ।
विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपम् ॥
अजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं ।
चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं ॥

हे ईश्वरों के ईश्वर निर्वाण स्वरूप मैं आपको नमस्कार करता हूं । जो अजन्मा गुणातीत, सब प्रकार की कल्पनाओं से परे एवं इच्छा रहित है । सर्वत्र आकाश में व्यापक रहने वाले चिदाकाश व्यक्त में हे प्रभो मैं आपको भजता हूं ।

निराकार मोंकार मूलं तुरीयं ।
गिरा ग्यान गोतीतमीशं गिरीशं ॥
करालं महाकाल कालं कृपालं ।
गुणागार संसारपारं नतोऽहं ॥

हे आदि मूल, निराकार, ओंकार स्वरूप, हे अगोचर गिराज्ञान से अतीत, इन्द्रियों से परे, ईश्वरों के ईश्वर कैलाशपति, कालों के महाकाल-कालस्वरूप हे परम कृपालु गुणों के सागर-त्रिगुण संसार से परे मैं आपको नमस्कार करता हूं ।

तुषाराद्रि संकाश गौरं गभीरं ।
मनोभूत कोटि प्रभा श्री शरीरं ॥
स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारु गंगा ।
लसद्भाल बालेन्दु कंठे भुजंगा ॥

हिमालय के समान अत्यन्त गौर वर्ण, हजारों काम देवों से भी, सुन्दर जिनका शरीर है जिनके मस्तिष्क में चन्द्रमा और गले में सर्प शोभा पा रहे हैं ।

चलत्कुंडलं भ्रू सुनेत्रं विशालं ।
प्रसन्नाननं नीलकंठं दयालं ॥
मृगाधीश चर्माम्बरं मुण्डमालं ।
प्रियं शंकरं सर्व नाथं भजामि ॥

जिनके कानों में हिलते हुए कुण्डल शोभा पा रहे हैं और जिनके सुन्दर विशाल नेत्र हैं, जो प्रसन्न मुख नील कण्ठ दयालु हैं जो व्याघ्र चर्म ओढ़े हुए हैं और मुण्डों की माला धारण किये हुए हैं ऐसे प्यारे भगवान् शंकर को मैं नमस्कार करता हूं ।

प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं ।
अखंडं अजं भानुकोटि प्रकाशं ॥

जयः शूल निर्मूलनं शूल पाणि ।
भजेऽहं भवानीपति भावागम्यं ।।

अत्यन्त तीव्र, तेजस्वी परमात्मा अखण्ड अजन्म-करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाश वाले त्रिताप निवारक भावगम्य भवानी पति, शूलपाणि भगवान् को मैं भजता हूं।

कलातीत कल्याण कल्पान्तकारी ।
सदा सज्जनानन्ददाता पुरारी ।।
चिदानन्द सन्दोह मोहापहारी ।
प्रसीद—प्रसीद प्रभो मन्मथारी ।।

जो कलान्त, कल्याणकारी, कलातीत एवं कल्याण स्वरूप है, सज्जनों को सदा आनन्द देने वाले हैं। सच्चिदानन्द घन एवं मोह को नाश करने वाले हैं। त्रिपुरारि कामदेव के शत्रु आप मुझ पर प्रसन्न हो जाओ।

न यावद् उमानाथ पादारविन्दं ।
भजतीह लोके परे वा नराणां ।।
न तावत्सुखं शान्ति सन्तापनाशं ।
प्रसीद प्रभो सर्व भूताधिवासं ।।

जब तक मनुष्य उमानाथ के पादारविन्द का स्मरण नहीं करते है तब तक उनको सुख-शान्ति प्राप्त नहीं हो सकता और सन्ताप करा नाश नहीं हो सकता। इसलिये प्राणी मात्र के आश्रय आप मुझ पर कृपा करें।

न जानामि योगं जपं नैव पूजां ।
न तोऽहं सदा सर्वदा शंभु तुभ्यं ।।
जरा जन्म दुःखौघ तातप्यमानं ।
प्रभो पाहि आपन्नमामीश शंभो ।।

मैं जप, पूजा आदि कुछ भी नहीं जाता किन्तु हे शम्भु सदा-सर्वदा आपकी शरण में हैं। बुढ़ापे, जन्म जरादियों के दुखों से तपे हुऐ और आपकी शरण में पड़े हुऐ मुझ आधीन की आप रक्षा करें।

कुछ संस्मरण

"योगिनी रामरती"

[एक साधक]

बंगाल बिहार की सीमा पर जमुनियाँ घाट नामक एक स्थान है। उस स्थान को देखने के विचार से एक बार योग-योगेश्वर श्री प्रभु जी घूमते-घूमते वहाँ पहुंच गए। और पवित्र गंगाजल में स्नान करके अपने नित्य आत्म-स्वरूप का चिन्तन करते हुए वहाँ बैठ गये। यह स्थान थोड़ा सा एकान्त में था। थोड़ी ही देर में यहीं पर कहीं से घूमते हुए दो पिता-पुत्र आए। वे वर्ण से क्षत्रिय थे। उनके हाथ में कृपाण लगी हुई थी। उनका मुख बहुत लाल था। उनके दुःखी मन को देख करके श्री प्रभुजी को बड़ी दया आई और पूछा कि भाई तुम बड़े दुखी मालूम पड़ते हो इसका क्या कारण है? यदि कोई खास गोपनीय बात नहीं तो तुम हमें बतादो। सम्भव है तुम्हारी दुख-निवृत्ति का कारण हम बन जायें। श्री करुणाकर प्रभुजी के वचनों को सुन कर पहले तो उन दोनों ने संकोच किया किन्तु बाद में बृद्ध क्षत्रिय ने संकोच छोड़ करके सत्य-सत्य कह दिया। उसने श्री प्रभुजीजी को बतलाया कि महाराज हम दोनों पिता-पुत्र हैं। साथ में यह मेरा पुत्र है। हमारी एक लड़की है उसका नाम रामरती है। सरकार बस वह बहुत दुराचारिणी हो गई है। लोक-लाज कुलकान सभी उसने बिना किसी संकोच के छोड़ दिए हैं। और खुल्लम-खुल्ला मद्य पी करके व्यभिचार करती हैं। आत्मांश होने के नाते से थोड़ा सा हमें दुःख है। लोकापवाद हमसे सहन नहीं होता। यही दुःख लेकर के हम दोनों यहाँ आये हैं और यह विचार कर रहे हैं कि या तो देश छोड़ करके हम हीं कहीं चले जायें जिससे ये हृदय बेधिनी कर्ण कटु बातें हमारे कानो मे न पड़ सकें या हम अपने हाथों से उस लड़की का कत्ल कर दें जिससे सदा के लिए ही यह कंटक कट जावे और हम अपवाद से बच जायं। श्री प्रभुजीने उनकी सत्य बातो को सुन कर आश्वासन देते हुए कहा भाई तुम्हें भी कहीं जाना न पड़े और उस लड़की का भी उद्धार हो जावे तो क्या यह बहुत ही उत्तमन होगा? श्री प्रभुजी के इस पवित्र वाणी को सुनकर उन दोनों ने कहा महाराज हमारे विचार में तो यह असम्भव है। जिस प्रकार बिना पौधे के आकाश में फूल नहीं

लग सकता उसी प्रकार से इस लड़की का उद्धार होना भी हमारी दृष्टि में असम्भव है फिर भी आप महात्मा हैं सर्व समर्थ हैं आपकी कृपा से कुछ हो जाय तो अच्छा ही है। वह लड़की इन स्थानों पर ही घूमा करती है। सम्भव है वह कहीं न कहीं से आप कदाचित वह आपकी बात को मान ले और उसका सुधार हो जाये तो अच्छा ही है। इसी बीच में रामरती कहीं से घूमती हुई वहां आ गई। उसके सिर के बाल पागलों की तरह बिखरे हुए थे। शराब की बोतलें हाथ में थीं।

परम कारुणिक श्री प्रभुजी ने कृपा करके उसे अपनी ओर बुलाया और कहा देवी तू यह कर्म क्यों करती है। इस भ्रष्टाचार को तू छोड़ दे तो तुझे इससे भी बड़ा आनन्द मिल जायेगा। किन्तु उस लड़की को विश्वास न हुआ। इसने बिलकुल स्पष्ट कहा यह सब काम मैं अपने आनन्द के लिए करती हूं। दो-चार व्यक्ति मेरे साथ रहते हैं मुझे किसी का भय नहीं है। इससे बढ़कर आनन्द संसार में मुझे और कोई नहीं दिखाई देता। यदि इससे बढ़कर आनन्द कोई और होता हो और यदि मुझे वह दे सकें तो यज्ञोपवीत पकड़कर शपथ ग्रहण करें तब मैं आपकी बात पर विश्वास कर सकती हूं। यदि वह आनन्द इससे बढ़कर हुआ तो मैं इन कर्मों को छोड़ दूंगी। रामरती की इस प्रकार की हठ को देख कर और उसके कल्याण को अपनी दृष्टि में रखकर परम कृपावश हो प्रभुजी ने यज्ञोपवीत पकड़कर सौगन्ध खाई और कहा कि हां देवी इससे बड़ा आनन्द होता है और वह हम तुम्हें अभी देंगे जिसको पाकर के तू अपने तन की सुध-बुध भूल जायगी और आज से ही तू देवी कहलाएगी। यह कह करके श्री प्रभुजी ने रामरती को दिव्य-साधन बतलाया और सिंहासन पर बैठकर उस साधन को करने की आज्ञा प्रदान की। रामरती ने ज्यों ही आसन लगा करके उस साधन को करना आरम्भ किया तत्काल उसकी वृत्ति अन्तर मुखी हो गयी।

श्री प्रभुजी की कृपा से रामरती कृतार्थ हो गयी। रामरती के बाप व भाई ने देखा कि श्री प्रभुजी ने रामरती को बिठाकर केवल मात्र उसके सिर पर अपना हाथ रखा है। जिससे तत्काल ही वह तन-मन की सुधि को खोकर समाधिस्थ हो गयी है। वह परम योगनियों की तरह से आसनबद्ध होकर बैठी है। रामरती की यह स्थिति देख करके पिता पुत्र दोनों बड़े आश्चर्य में थे। उनके आश्चर्य को देख करके श्री प्रभुजी ने उनको समझा-कर कहा कि भाई अब तुम निश्चिन्त रहो अब यह रामरती दुराचारणी लड़की नहीं रही। अब यह साक्षात् देवी हो गई है जो इसकी सेवा करेगा वह मन चाहा फल पाएगा। यह कह करके श्री प्रभुजी तीन रोज के लिए किसी साधू से मिलने के लिए चले गए।

तीन रोज बाद दुबारा लौटकर आए तो

श्री प्रभुजी ने देखा कि रामरती उसी प्रकार बैठी है। यह देख करके उन करुणासागर का हृदय अतिशय प्रसन्न हुआ और वहां आस-पास गांव वालो को कह दिया कि यह साक्षात् देवी है जो इसकी सेवा करेगा वह मनवांछित फल पायेगा। यह कहकर श्री प्रभुजी नैपाल-हिमालय को चले गए। श्री प्रभुजी के चले जाने के बाद रामरती को बिलकुल निश्चेष्ट समाधि को देख करके लोग उसके दर्शनों को आने लगे। रामरती बिलकुल चेतना शून्य रहती थी। हिमालय जाने से पूर्व श्री प्रभुजी ने स्वयं अपने हाथों से दूध का एक कटोरा उसके मुंह से लगाया वह उसे प्रसन्नता से पी गयी थी और उसी प्रकार का आदेश लोगों को उन्होंने दे दिया था कि तुम लोग भी इसी प्रकार इसको दूध पिला दिया करना। इसी प्रकार की स्थिति में रहती हुई यह थोड़ा बहुत कुछ खा लिया करेगी। श्री प्रभुजी के उस आदेश को स्मरण करके उसी प्रकार लोग उसकी सेवा करने लगे। इस समाधि की स्थिति में ही रामरती के मुख से लोगों के लिए कई प्रकार के आशीर्वाद स्वतः ही निकल जाते थे और वह ज्यों के त्यों सफल हो जाते थे। बहुत से लोगों ने अपने मनो-वांछित फल पा करके वहीं रामरती के स्थान पर शिवालय, धर्मशाला, और रामरती के बैठने की जगहपर भी एक अच्छा मठ बना दिया जिसमें बैठी हुई रामरती साक्षात् भवानी की तरह समाधिस्थ रहती थी। रामरती किसी से बोलती नहीं थी। केवल मात्र श्री प्रभुजी की अपार कृपा से जब किसी का भला होना होता था तो आशीर्वादात्मक वाणी ही उसके मुंह से निकलती थी। लगभग बारह साल तक रामरती उसी स्थान पर समाधिस्थ रही।

जब बारह साल बाद श्री प्रभुजी हिमालय से लौटकर किसी गाड़ी में जमुनियां घाट की तरफ से निकल रहे तब। रामरती नेपहले ही ध्यान में देख लिया था कि आज वह परम कृपासागर श्री प्रभु जो हिमालय से लौटकर इधर आ रहे हैं। जो पल भर में महान् कृपा दान देकर के हिमालय को चले गए थे। श्री प्रभुजी के इस आगमन को देख करके सहसा बोल उठी और अपने पास बैठे लोगों से कहा अरे! जाओ स्टेशन भाग जाओ, इस गाड़ी में परम कृपा सागर मेरे गुरुदेव श्री प्रभुजी आ रहे हैं जो मुझे यहां अमर करके बैठा गए थे। उनको जल्दी से लिवा लाओ ताकि आंख खोलकर दर्शन कर लूं और अपने जीवन को सफल बना लूं।

रामरती के मुख से ऐसी वाणी सुन करके सत्संगी लोग तत्काल स्टेशन की ओर भाग उठे किन्तु उनके स्टेशन पर पहुंचने से पहले ही श्री प्रभुजी को स्टेशन मास्टर ने पहले ही उतार कर बैठा लिया था। यह घोषणा पहले से काफी घोषित हो गई थी कि रामरती के गुरुदेव आ रहे हैं। इसलिए स्टेशन मास्टर के मन में यह तीव्र लालसा बन गई थी कि सबसे पहले वे ही कोई कृपामय आशीर्वाद

प्राप्त करें जिससे सांसारिक-आदि व्याधि से छूट जायं। इसी बीच में शेष लोग गाड़ी देखकर लौट गए। उनको श्री प्रभुजी नहीं मिले। यह प्रार्थना उन्होंने रामरती से जाकर के कर दी कि देवी हमें आपके गुरुदेव इस गाड़ी पर नहीं मिले। उनकी विनय को सुन-कर, रामरती ने पुनः उनको आदेश दिया कि ऐसी बात नहीं है तुम लोग जाओ उन कृपा-निधानजी को स्टेशन मास्टर ने अपने कमरे में बिठा लिया है वह किसी विशेष अलभ्य लाभ की इच्छा से ऐसा कर रहा है। तुम जाकर श्री प्रभुजी को विनय पूर्वक लिवा लाओ। मुझे स्टेशन पहुंचने की आज्ञा नहीं मिल रही है इसलिए विवशता से यहां बैठी हूं। देवी रामरती की इस दूसरी आज्ञा को पाकर के सत्संगी लोग उसी समय भागे गये और स्टेशन पर जाकर स्टेशन मास्टर का कमरा देखा तो पाया कि सचमुच स्टेशन मास्टर ने श्री प्रभुजी को बिठा रखा था और वह उनसे अपने स्वार्थ की अनुनय विनय कर रहा था। इसको अन्य सब लोग भी साहस के साथ स्टेशन पर पहुंच करके स्टेशन मास्टर के उसी कमरे में गए। लोगों ने प्रेम की तरंग में आकर के श्री प्रभुजी को अपने कंधों पर बैठा लिया और रामरती के स्थान की ओर ले चले। श्री प्रभुजी साधारणतः उन लोगों से कहते रहे अरे भाई कहां ले जा रहे हो रामरती कौन है? कहां है? लोगों ने प्रार्थना की प्रभो रामरती आपकी चरण-धूलि है जिसको आप चलते-चलते समाधि का दान दे गए थे। वह लड़की अब देवी है। साक्षात् भगवती है। आपके दर्शन के लिए तड़प रही है आपके ही आदेश को पा करके वह यहां तक नहीं आई।

इस प्रकार की बातें करते हुए लोग श्री प्रभुजी को ले जा रहे थे तो श्री प्रभुजी ने स्वयं अपने मुखारविन्द से यह आज्ञा दी कि अच्छा भाई अब तुम लोग हमें नीचे उतार दो। अब वह रामरती दौड़ती हुई आ रही है और वह सहसा हमारे चरणों से लिपट जायगी। कदाचित् उद्वेग में उसको चरण-स्पर्श न हो सका तो हो सकता है उसके शरीर को प्राण छोड़ दें। इसलिए तुम लोग हमें अपने कन्धों से नीचे उतार दो। यह आज्ञा पाकर ज्यों ही श्री प्रभुजी को लोगों ने कन्धे से नीचे उतारा त्यों ही लोगों ने देखा कि रामरती बड़ी तेज के साथ दौड़ी आ रही है। उसको बड़े वेग से दौड़कर आती हुई देख करके श्री प्रभुजी ने लोगों को दूर कर दिया और रामरती श्री प्रभुजी के चरणों में लिपटकर बेहोश हो गयी। रामरती को बेहोश देखकर श्री प्रभुजी ने आज्ञा प्रदान की कि इसको तुम इसी हालत में उठाकर ले चलो। लोगों ने श्री प्रभुजी का आदेश पा करके रामरती को उठा ले गए और बड़े आदर के साथ उसको मठ में पहुंचा दिया। कई घण्टे बाद रामरती जब अपनी चेतना में आई तो श्री प्रभुजी ने रामरती की ओर देखकर कहा

कहो रामरती यह तुमने क्या प्रपंच फैला रखा है। हम तो तुम्हें जंगल में बैठा गये थे आज तो यहाँ पर बड़े-बड़े मन्दिर शिवालय दिखाई दे रहे हैं। रामरती ने श्री चरणों में परम विनय के साथ उत्तर दिया हे ! दीन वत्सल यह सब तो आप की ही महिमा है मैंने तो आँख खोल करके आपके ही दिव्य-दर्शन किये हैं। जिस समय आपने मुझे यहाँ जंगल में बिठाया था उस समय आपके कृपामय स्वरूप को देखते-देखते मैं ध्यान-मग्न हो गई थी। उसी कृपामय छबि को आज बारह साल बाद पुनः अपनी खुली आँखों से देख रही हूं। इस बीच में जो अमूल्य निधि आप सौंप गये थे मेरा मन उसी में लीन रहा है। मुझे भी आश्चर्य है कि आपने यह कैसी अनुपम कृपा की है कि जिससे यहाँ पर यह विस्तार दिखाई दे रहा है। इसी प्रकार का वार्त्तालाप होता रहा। बाद में जब श्री प्रभुजी वहाँ से चलने लगे तो रामरती ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि हे ! दीनबन्धु मैं अब यहाँ नहीं रहना चाहती। कृपा करके अपनी इस चरण धूलि को अपनी कृपामय चरण कमलों के साथ रख लीजिए और कुछ सेवा करने का समय प्रदान कीजिये। रामरती के विचार श्री प्रभुजी के साथ जाने को जानकर लोगों के मन में बड़ा कष्ट हुआ क्योंकि वह उन लोगों के लिए साक्षात् देवी थी तथा उसके द्वारा उनका बड़ा भला हो रहा था।

लोगों ने मन ही मन और प्रत्यक्ष में भी श्री प्रभुजी से प्रार्थना की कि हे सर्व शक्तिमान प्रभो यह रामरती अब हमारे लिए जगदम्बा भवानी है। कृपा करके हमारे कल्याण के लिए इनको यहीं छोड़ दीजिए। श्री प्रभुजी ने उनकी दीन विनय को सुन करके और रामरती का वहीं रहना उचित समझ करके रामरती को पूरी-पूरी सान्त्वना दे कर और यह समझा कर कि रामरती हम कहीं भी रहते हुए तुम्हारे पास ही रहेंगे, तुम्हारे हर कार्य को हर समय हम देखेंगे वहाँ से चले आए। श्री प्रभुजी के वहाँ से चले आने के बाद उनके चरण कमलों वियोग का महाकष्ट रामरती को हुआ जिसके फलस्वरूप उसके मन में तीव्रतम वैराग्य झलक उठा और कुछ दिन वहाँ रहने के बाद रामरती भी वहाँ से कहीं वनों में निकल गई। रामरती के भक्त समुदाय में से जिस किसी को उसके कहीं दर्शन प्राप्त हुए किन्तु कोई भी यह जान न सका कि देवी रामरती आजकल कहाँ किस जंगल में वास करती है। रामरती के मुख से निकले वरदानों को पा करके वहाँ के स्त्री-पुरुष सब प्रकार से कृत कृत्य हो गए थे अतः उसकी अज्ञात वन वासनी हो जाने पर भी वे मठ में बैठ करके निरन्तर उसका स्मरण करते रहते थे। आजकल भी रामरती के चिन्तन करने वाले लोग कहीं कहीं मिलते हैं जिनको रामरती के किए हुए उपकारों का बराबर स्मरण है।

रामरती जितने दिन भी वहाँ रही लोगों ने उसको जगदम्बा भवानी के रूप में देखा। यह अनुपम तपस्विनी एवं परम योगिनी रामरती के सत्संग में जो भी आया उसने अलभ्य लाभ पाया। यह उन कृपामय की की कृपा है जिसके निमित्त बना के योग योगेश्वर कार्य्य करते हैं।

सम्पादकीय--

आत्म-निवेदन

अनंत शक्ति-सम्पन्न, ऋद्धि-सिद्धि-प्रदाता क्षण-क्षण वन्दनीय, अभिनंदनीय, योग-योगेश्वर भगवान सदा शिव और उन्हीं की दिव्य जोति से ज्योतित महाप्रभु श्री रामलालजी के असीम अनुग्रह से अनन्त श्री सम्पन्न योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की कृपा का सहारा एवं सहयोग पाकर 'सिद्धयोग' का यह अङ्क द्वितीय वर्ष-प्रवेशाङ्क के रूप में आपके सामने है।

हमने अपने प्रथम वर्ष के किसी एक अङ्क में यह निश्चय प्रकट किया था कि 'सिद्धयोग' के दूसरे वर्ष का प्रथम अङ्क 'सिद्धाङ्क विशेषाङ्क' के रूप में पाठकों को मिलेगा, किन्तु श्री सद्गुरुदेव जी के बहुधा योग-प्रचार कार्यक्रमों में व्यस्त रहने एवं गत मास में सुदूर नेपाल यात्रा में चले जाने के कारण तत्सम्बन्धी सामग्री का यथोचित संकलन व संग्रह उनके परामर्श व निर्देशन के अभाव में नहीं किया जा सका। गुरुदेव जी की नेपाल यात्रा से वापिस आने पर जो समय ऐसे विशेषांक के लिए अपेक्षित था, उसका भी अभाव हमारे सामने था अतः इस दशा में प्रस्तुत अङ्क द्वितीय वर्ष प्रवेशांक के रूप में ही प्रकाशित करके हमें सन्तोष करना पड़ा। 'सिद्धांत विशेषांक' फिर कभी जब श्री गुरुदेवजी का निर्देश व परामर्श प्राप्त होगा निकाला जायगा।

जैसा कि हमने पिछले अंक में लिखा था 'सिद्धयोग' योग के सिद्धान्त और शिक्षाओं के व्यापक प्रचार के उद्देश्य से निकाला गया है तथा इस उद्देश्य की पूर्ति की दिशा में कई हजार रुपये का घाटा इसके संचालक श्री सद्गुरुदेवजी ने ही वहन किया है। विज्ञापन लेकर 'सिद्धयोग' के आर्थिक साधनों का बढ़ाना श्री गुरुदेव को इष्ट नहीं। वे केवल ग्राहक परिवार से उसका शुल्क मात्र लेकर ही इसे स्वावलम्बी बनाने की इच्छा रखते हैं। अतः सिद्ध-योग के प्रत्येक पाठक और हितैषी से हम यह अपेक्षा रखते हैं कि इस नूतन वर्ष में वे सिद्धयोग जैसे उपादेय योग सम्बन्धी पत्र के दूसरे वर्ष के ग्राहक बन कर न केवल १०) रु० अपना शुल्क भेजने की कृपा करें वरन् अपने अपने क्षेत्र में कम से कम पांच-पांच नये ग्राहक बनाकर उनका भी शुल्क भिजवादें। 'सिद्धयोग' के प्रेमी पाठकों का इतना सा सहयोग ही 'सिद्धयोग' को आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बनाने में सहायक होगा।

आशा है कि कृपालु मित्रों पाठकों और योग विद्या के प्रेमियों का यह सहयोग हमें अवश्य प्राप्त होगा। हम उनके इस कृपा-पूर्ण सहयोग के लिये उन्हें अपना अग्रिम साधुवाद अर्पित करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। नये वर्ष की मंगल-वेला में 'सिद्धयोग' आपके यशस्वी, स्वस्थ जीवन की कामना करता है। आइए हम और आप सब मिलकर साथ-साथ लोक कल्याण के हेतु प्रार्थना करें:—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तुनिरामयः
सर्वेभद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत् ॥

—दिव्य

जीवन-निर्माण को नई दिशा देने वाले

हमारे प्रकाशन

१.	योगासन चित्रपट।	१) २५
२.	योग--योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलालजी की स्वहस्त लिखित जीवन कथायें।	१) २५
३.	ब्रह्मचारी गोपालानन्द।	१)
४.	योगीराज स्वामी मुलखराज जी।	१)
५.	योग क्या?	) २५
६.	यम–नियम।	) ३७
७.	आठ योगी।	१)
८.	समाधिस्था योगनियें।	१)
९.	सवाई के चमत्कारिक चरित्र।	) ७५
१०.	भोग, रोग और योग।	१)
११.	योगेश्वर चरित्र माला [भजन]	) ६०
१२.	श्री महाप्रभु जी का गीतकाव्य [कविता]	) ७५
१३.	सुधा-संगीत [भजन]	) ५०
१४.	इन्द्र शर्मा के आठ भजन	) १०
१५.	श्री सद्गुरु संकीर्तन भजन–माला।	) ६०
१६.	जीवन तत्त्व साधन।	) ५०

मिलने का पता :—

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन

योग–प्रशिक्षण केन्द्र, श्री सिद्ध गुफा

सवाई (आगरा)

प्रियतम को पाने के लिए

जबतक तुम कंघीके समान अपने अहंकाररूपी सिरको ज्ञान रूपी आरेके नीचे नहीं रखोगे, तबतक उस प्यारेके सिरके बालोंको नहीं प्राप्त हो सकते।

जबतक सुरमे की तरह पत्थरके नीचे पिस न जाओगे, तबतक सच्चे प्रियतम की आँखोंतक नहीं पहुंच सकते।

जबतक मोती की तरह तारसे नहीं छिदोगे, प्रियके कानतक नहीं पहुंच सकते।

ज्ञानी कुम्हार जबतक तेरी अहंकाररूपी मिट्टीके आबखोरे न बना लेगा, तबतक प्रिय लाल अधरों तक तू न पहुंच सकेगा।

जबतक कलम के समान सिर चाकू के नीचे न रख दोगे कदापि उस प्रियतम की अंगुलियों तक नहीं पहुंच सकते।

जब तक मेहंदी के समान पत्थर के नीचे पिस न जाओगे, तबतक प्रियतम के चरणों तक कदापि नहीं पहुंच सकते।

जब तक फूल की तरह डाली से अलग नहीं किये जाओगे, प्रियतम तक किसी सूरत से पहुंच नहीं सकते।

बांसुरी के समान सिर से पैर तक अहंकार से खाली हो जाओ; नहीं तो, बांसुरी बजाने वाले प्रियतम के ओठों का चुम्बन मिलना कदापि सम्भव नहीं।

सम्पूर्ण सत्य को ग्रहण करने के लिये तुम्हें सांसारिक इच्छाओं का त्याग करना होगा, तुम्हें सांसारिक राग-द्वेष से ऊपर-उठना होगा। अपने उन सारे रिश्ते-नातों को नमस्कार करना पड़ेगा, जो तुम्हें बांधकर गुलाम बनाते और नीचे घसीटते हैं। यही साक्षात्कार का मूल्य है। जब तक मूल्य अदा न करोगे, सत्य को नहीं पा सकते।

[स्वामी रामतीर्थ]

मुद्रक-देवीप्रसाद शर्मा, 'दिव्य' क मैसोनिक प्रिंटिंग प्रेस, कसाई कसों, साजगंज आगरा-२